सन्तवाणी

प्रवचनमाला

भाग–8

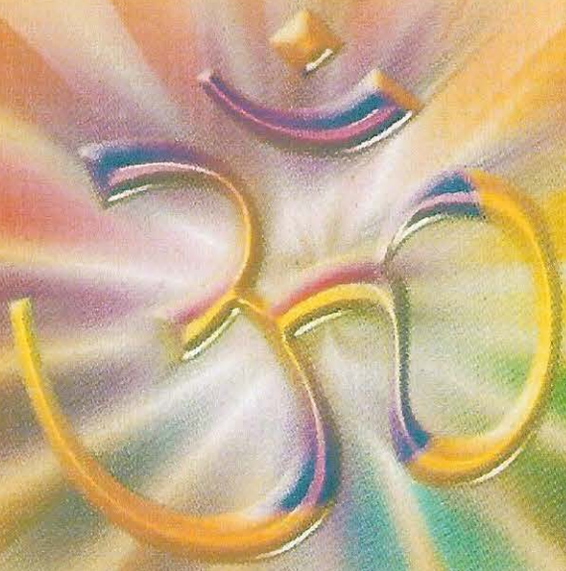

मानव सेवा संघ, वृन्दावन

सन्त वाणी

भाग 8

मानव सेवा संघ प्रकाशन
वृन्दावन (मथुरा)

- प्रकाशक :

  मानव सेवा संघ

  वृन्दावन (मथुरा)

  पिन-281121

- सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रथम बार -4000

- होलिकोत्सव 2009

- मूल्य : 25.00 रुपये

- मुद्रक :

  पावन प्रिन्टर्स,

  मेरठ

सन्त वाणी

भाग 8

स्मरणीय

1. सन्त अमर हैं। उनकी वाणी अमर है।
2. इस वाणी के आदर में सत्य का आदर है।
3. इस वाणी के आदर में जीवन का आदर है।
4. इस वाणी के आदर में सन्त का आदर है।
5. इस वाणी के आदर में संघ का आदर है।

—मानव सेवा संघ

प्रार्थना

('प्रार्थना' आस्तिक प्राणी का जीवन है।)

मेरे नाथ !
आप अपनी
सुधामयी,
सर्व समर्थ,
पतितपावनी,
अहैतुकी कृपा से,
दुःखी प्राणियों के हृदय में,
त्याग का बल
एवं
सुखी प्राणियों के हृदय में,
सेवा का बल
प्रदान करें;
जिससे वे
सुख-दुःख के
बन्धन से
मुक्त हो,
आपके
पवित्र प्रेम का
आस्वादन कर,
कृतकृत्य हो जायँ।

ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द !

प्रार्थना

मेरे नाथ,

आप अपनी सुधामयी, सर्व समर्थ, पतित पावनी, अहैतुकी कृपा से मानव मात्र को विवेक का आदर तथा बल का सदुपयोग करने की सामर्थ्य प्रदान करें एवं हे करुणा सागर ! अपनी अपार करुणा से शीघ्र ही राग–द्वेष का नाश करें। सभी का जीवन सेवा–त्याग–प्रेम से परिपूर्ण हो जाए।

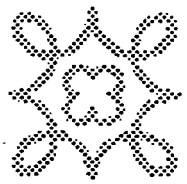

ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द !

वस्तु खिंचती है धरती की ओर
मनुष्य खिंचता है अनन्त की ओर

।।श्री हरिः शरणम्।।

अपनी ओर से

सत्संग प्रेमी भाई-बहन।

सन्तवाणी भाग आठ को आपकी सेवा में समर्पित करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। इस नवीन ग्रन्थ के प्रकाशन के पूर्व 'सन्तवाणी' के सात भाग प्रकाशित हो चुके हैं। क्रान्तिकारी विचारक, मानवता के मसीहा, संघ के संस्थापक, ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी शरणानन्द जी की अमर वाणी से साधक गण पूर्णतः परिचित हैं तथा उससे लाभान्वित होते रहे हैं। श्री स्वामी जी महाराज के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रवचन, जो अभी तक पुस्तक रूप में प्रकाशित नहीं हो पाए थे, उन्हें इस 'प्रवचन माला' में संकलित किया गया है। आठ कैसेट्स में सोलह प्रवचन टेपांकित थे, उनमें से बारह प्रवचन ही इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किए गए हैं। जो प्रवचन स्पष्ट नहीं थे, उन्हें छोड़ दिया गया है।

पूज्यपाद श्री महाराज जी की विचार धारा और दर्शन का केन्द्र 'मानव' है। इस सम्बन्ध में वीतराग सन्त स्वामी राम सुखदास जी ने अपने विचारों को प्रकट करते हुए कहा था, "श्री शरणानन्द जी महाराज नए दार्शनिक थे। उनका दर्शन (मानव-दर्शन) छहों दर्शनों से निराला है। उनकी बात को कोई काट नहीं सकता, जबकि अन्य दर्शनों की बातें एक-दूसरे को काटती हैं।"

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह 'प्रवचन-माला' मानव-जीवन की समस्याओं के समाधान में सहायक होगी।

'प्रवचन-माला' शीर्षक यह नवीन ग्रन्थ आपके जीवन को आलोक प्रदान करे—इसी शुभाशंसा के साथ।

होली, उत्सव, वृन्दावन
मार्च, 2009

विनीत,
अद्वैत चैतन्य

सन्तवाणी

जो सब ओर से विमुख होकर अपने में ही 'अपने' को पा लेता है, उसे कुछ भी करना शेष नहीं रहता। प्रत्येक क्रिया तथा शून्य का साक्षी सभी क्रियाओं तथा शून्य से अतीत है। उस 'अतीत' में ही जिसका अहंभाव विलीन हो गया है, वही अखण्ड आनन्द को पाकर कृतार्थ हुआ। हृदय प्रीति से भरा रहे, मन निर्विकल्प होकर बुद्धि में विलीन हो जाए और इन्द्रियाँ विषयों से विमुख होकर मन में विलीन हो जाएँ यही जीव का परम पुरुषार्थ है। भोग-वासनाओं का अन्त होने पर इन्द्रियां विषयों से विमुख हो मन में विलीन हो जाती है, मन सब प्रकार के संकल्पों से रहित होकर विवेक में विलीन हो जाता है।

विवेक का सूर्य उदय होते ही यह जो कुछ दिखाई देता है उससे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है और फिर भोग 'योग' में तथा अविवेक 'बोध' में परिवर्तित हो जाता है। योग अर्थात् सब प्रकार के चिन्तन से रहित होते ही बोध स्वयं हो जाता है और फिर केवल दिव्य चिन्मय परमतत्त्व से अनन्य प्रेम, बिना ही प्रयत्न के स्वतः हो जाता है। जिससे अखण्ड-अनन्त रस की उपलब्धि होती है, जो वास्तव में तुम्हारा निज स्वरूप है।

पूज्यपाद स्वामी शरणानन्द जी महाराज

अनुक्रमणिका

क्रमांक	पृष्ठ संख्या
1. प्रार्थना	4
2. प्रार्थना	5
3. भूमिका	6
4. सन्तवाणी	7
5. अनुक्रमणिका	8
6. प्रवचन 1	9
7. प्रवचन 2	22
8. प्रवचन 3	34
9. प्रवचन 4	47
10. प्रवचन 5	61
11. प्रवचन 6	77
12. प्रवचन 7	92
13. प्रवचन 8	101
14. प्रवचन 9	114
15. प्रवचन 10	124
16. प्रवचन 11	137
17. प्रवचन 12	150

प्रवचन 1

मेरे निजस्वरूप उपस्थित महानुभाव तथा भाई और बहन !

माँग की पूर्ति संसार की सहायता से नहीं हो सकती। इसलिए हमें माँग की पूर्ति के लिए किसी परिस्थिति, किसी अवस्था, किसी वस्तु-व्यक्ति का किसी देश-काल का आवाहन नहीं करना है। अगर यह बात आपको पसन्द आ जाए कि माँग की पूर्ति के लिए संसार की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है, तो माँग की पूर्ति के लिए संसार की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। क्यों? क्योंकि संसार हमें जो सहायता देता है, उससे हमारी माँग की पूर्ति नहीं हो सकती।

फिर हमारा और संसार का सम्बन्ध क्या है? केवल यह सम्बन्ध है, कि संसार की धरोहर के रूप में जो हमारे पास शरीर है, वस्तु है—यह संसार की धरोहर है—यह हमें आपको संसार से मिली है। संसार की जो धरोहर हमारे पास है, उसे हम विधिवत्, हर्षपूर्वक, पवित्र भाव से संसार की सेवा में लगा दें। अर्थात् हमारा और संसार का सम्बन्ध सेवा का सम्बन्ध है। हमारा और संसार का और कोई सम्बन्ध नहीं है।

सेवा का अर्थ क्या है? सेवा का अर्थ है मन, वाणी, कर्म से बुराई-रहित होना। सेवा का अर्थ क्या है? यथाशक्ति परिस्थिति के अनुसार भलाई करना। लेकिन वह कब? जब की हुई भलाई का फल और मान न माँगें तब। बुराई-रहित होकर भलाई का फल न माँगें न चाहें—यह संसार की सबसे बड़ी सेवा है।

बुराई-रहित होने में सब स्वतन्त्र हैं ही। बुराई करना या न करना आपके वश की बात है। अगर आप बुराई करना पसन्द न करें तो बुराई आपके पास अपने आप थोड़ा ही आ जाएगी। तो संसार की सेवा करने में मानव सर्वथा स्वाधीन और समर्थ है। यथाशक्ति भलाई करने में भी समर्थ है और की हुई भलाई का फल न चाहने में भी समर्थ है। की हुई बुराई को न दोहराने में भी समर्थ है और जानी हुई बुराई को न करने में भी समर्थ है।

यह तो संसार की सेवा हुई। फिर हमारी सेवा कैसे होगी? हमारी सेवा होगी अचाह होने से। "मुझे कुछ नहीं चाहिए" इसके द्वारा हम अपनी सेवा कर सकेंगे। कैसे? अचाह होने से जब हम अप्रयत्न हो जाएँगे तब अप्रयत्न होने पर हमारा स्थूल शरीर स्थूल संसार से, सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म संसार से, कारण शरीर कारण संसार से सम्बन्ध टूट जाएगा, जब हमारा और संसार का सम्बन्ध टूट जाएगा, तब हममें अपने में संतुष्ट होने की सामर्थ्य आ जाएगी। और जब हममें अपने में संतुष्ट रहने की सामर्थ्य आ जाएगी तब अपने में जो अपना परमात्मा है, उसका अनुभव हो जाएगा। ऐसा प्रभु-विश्वासी ही कह सकता है, क्योंकि परमात्मा को सभी ईश्वर-विश्वासियों ने अपना स्वीकार किया है, सदैव स्वीकार किया है, सर्वत्र स्वीकार किया है। किसी भी परमात्मा को मानने वाले ने यह नहीं कहा कि परमात्मा समर्थ नहीं है, सदैव नहीं है,

सर्वत्र नहीं है, अद्वितीय नहीं है। तो सदैव होने से अभी है, सर्वत्र होने से अपने में है, सभी का होने से अपना है, समर्थ है और अद्वितीय है। अब ये तीन बातें आपके सामने आईं कि परमात्मा अभी है, अपना है, अपने में है। तीन बातें ये हुईं। जो चीज अभी है, उसके लिए भविष्य की आशा करेंगे क्या? और जो चीज अपने में है, उसे कहीं बाहर ढूँढोगे क्या? और जो चीज अपनी है, उससे प्रियता उदित नहीं होगी क्या? जो समर्थ है, वह हमें अपनाएगा नहीं क्या? जो चीज अपनी है, उसे भूल जाएँगे क्या? जो अद्वितीय है, उसकी पहचान करनी पड़ेगी क्या? अद्वितीय वस्तु की पहचान थोड़ा ही करनी पड़ती है।

इससे सारांश क्या निकला? इससे तात्पर्य यह निकला कि जब हमें परमात्मा की पहचान नहीं करना है, तो बुद्धि की आवश्यकता क्या? और अपना है तो प्रिय क्यों नहीं लगेगा? और जब अपने में है, तो अपने से दूर हो ही कैसे सकता है?

गंभीरता से विचार करें। महानुभाव, ईश्वरवाद का अर्थ अभ्यासवाद नहीं है, ईश्वरवाद का अर्थ विश्वासवाद है। ईश्वरवाद का अर्थ विचारवाद नहीं है, ईश्वरवाद का अर्थ आत्मीयतावाद है। ईश्वर में विश्वास करो और उसे अपना मानो और अभी मानो। इसका नाम ईश्वरवाद है।

ईश्वरवाद का अर्थ यह भी नहीं है कि हम ईश्वरवादी होकर, ईश्वर को अपना मान कर ईश्वर के सामने सदा हाथ पसारे रहें। हमें यह दे दो, हमें यह दे दो, हमें यह दे दो। जो हमें चाहिए वह बिना माँगे ही हमें मिलता है और जो बिना माँगे नहीं मिलता है, वह माँगने से भी नहीं मिलता। तो फिर माँगने का अर्थ क्या हुआ? इसलिए यह विधान ही है कि जो हमें चाहिए, वह बिना माँगे मिल जाएगा। और माँगने से भी कुछ नहीं मिलता तो माँगने का कोई अर्थ ही नहीं है।

यह मानव-जीवन है परमात्मा को अपने में, अभी प्राप्त करने के लिए। यह मानव-जीवन है मिली हुई वस्तु योग्यता, सामर्थ्य के द्वारा संसार के काम आने के लिए। यह मानव-जीवन है ज्ञानपूर्वक निर्मम, निष्काम, असंग होकर अपने में सन्तुष्ट होने के लिए। यह आपका-हमारा मानव-जीवन है।

मानव-समाज में जो आज हलचल मची है, वह क्यों है? वह केवल इसलिए है कि हम अपने में सन्तुष्ट नहीं हैं। वह किस लिए है कि हम संसार के काम आते नहीं हैं, वह केवल इसलिए है कि हम वर्तमान में अपने में अपने परमात्मा से मिलते नहीं हैं। कल्पना करो आज का सुधारवादी नेता धूम मचाए हुए है कि गरीबी मिटाओ, गरीबी मिटाओ। मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ। एक उदाहरण आपके सामने रखना चाहता हूँ। आप मुझको यह बताइये कि गरीबी कहाँ नहीं है। कोई ऐसा देश बताइये, कोई ऐसा वर्ग बताइये जहाँ गरीबी न हो। जहाँ बहुत बड़ी अमीरी दिखाई देती है वहाँ गरीबी का दर्शन होता है या नहीं। अगर कोई ईमानदार मानव इस बात को सिद्ध कर दे कि हमने अमुक परिस्थिति में ऐसा पाया कि जहाँ गरीबी नहीं थी।

गरीबी का अर्थ जरा सोचिए तो सही। जब तक हमको उससे भिन्न, जो अपने में है कुछ भी चाहिए, तब तक गरीबी मिट सकती है क्या? बोलो भई बोलो। जब तक हमें वह चाहिए जो अपने में नहीं है, जो अभी नहीं है उससे भिन्न यदि चाहिए तो गरीबी मिट सकती है क्या? हाँ, गरीबी का रूप बदल जाएगा। रूप क्या बदल जाएगा? जैसे 3/4 लिखते हैं न, उसे कोई 75/100 लिख दे। तो देखने में तो बहुत बड़ी संख्या हो गई, पर अर्थ में क्या अन्तर पड़ा? हमसे बताइये, एक व्यक्ति को बताइये, जो ईमानदारी से यह कह सके कि परिस्थिति के

आश्रित होकर, संसार के आश्रित होकर मेरे सभी संकल्प पूरे हो गए। ऐसा कोई नहीं मिलेगा। सारे विश्व में नहीं मिलेगा। इतना ही नहीं, दूसरी यह बात भी कि कोई ऐसा आदमी भी नहीं मिलेगा जो कहे कि मेरा कोई संकल्प पूरा नहीं हुआ। भई, जब सभी संकल्प किसी के पूरे नहीं होते और कुछ संकल्प सभी के पूरे होते हैं। यदि यह जीवन का सत्य है तो निःसंकल्प हुए बिना गरीबी कैसे मिटेगी? गंभीरता से विचार किया जाए, बड़े धीरज से इस बात पर विचार किया जाए कि जब तक हम निर्विकल्प नहीं होते तब तक गरीबी कैसे मिटेगी? जब तक निःसंकल्प नहीं होंगे तब तक निर्विकल्प होंगे कैसे? जब तक निर्मम नहीं होंगे तब तक निःसंकल्प होंगे कैसे? निर्मम होने से निःसंकल्प होंगे, निःसंकल्प होने से निर्विकल्प होंगे। निर्विकल्प होने से गरीबी क्यों मिटेगी? इसलिए मिटेगी कि जीवन अभी है, अपने में है। इसलिए गरीबी मिटेगी। अगर जीवन अपने में न होता, तो निर्विकल्प होने से गरीबी कभी नहीं मिटती। किन्तु महानुभाव, हम इस वास्तविकता पर विचार नहीं करते, जीवन का अध्ययन नहीं करते, जीवन के सत्य को स्वीकार नहीं करते। धूम मचाए हैं, गरीबी मिटेगी, गरीबी मिटेगी। कैसे मिटेगी कि सेठ को हटा दो सैकरेट्री को रख दो। रानी के पेट से निकला हुआ राजा नापसन्द है तो जनता के पेट से निकला हुआ मिनिस्टर गरीबी मिटाएगा। बिल्कुल भ्रमात्मक धारणा है। उन्होंने कहा साहब, गरीबी तब मिटेगी, जब सारे संसार में बहुत से कल-कारखाने हो जाएँगे। अरे, जिन देशों में बहुत से कल-कारखाने हो गए हैं, उनकी गरीबी नहीं मिटी। गरीबी मिटती तो क्या वे यह कहते। किसी पैसे वाले से जाकर मिलना और पूछना कि ईमानदारी से कहना—तुम्हारी तो गरीबी मिट गई होगी। भगवान की कृपा है—टालमटोल करेगा। तो बता भाई तेरी गरीबी तो मिट गई होगी, फिर

कर्जा क्यों देते हो किसी को? जब तुम्हारे मन में भी धन बढ़ाने की इच्छा है और मैं एक मजदूर हूँ मेरे मन में धन बढ़ाने की इच्छा है तो बताओ वस्तुस्थिति में क्या फर्क रह गया? क्या कर्ज बाँटने वाला गरीब नहीं है? कर्ज लेने वाला ही गरीब है क्या? सोचो जरा ईमानदारी से। क्यों भैया ईमानदारी से बताओ—तुम को किसी से भय तो नहीं है? अभय हो गए, चिन्ता नाश हो गई? स्वाधीन हो गए, अमर हो गए। अमर हो नहीं गया, निर्भय हो नहीं गया, स्वाधीन हो नहीं गया, चिन्ता मिटी नहीं और गरीबी मिट गई। कितना हम अपने आप को धोखा देते हैं, कितना हम अकारण दुखी होते हैं, परेशान होते हैं। अजी, गरीबी तो जीवन में इसलिए है क्योंकि आपको पराधीनता प्रिय है। गरीबी तो इसलिए है जीवन में क्योंकि आपको अनुदारता प्रिय है। गरीबी तो इसलिए है क्योंकि तुम्हें प्रेम अप्रिय है। जहाँ प्रेम की गंगा लहराती हो, जहाँ स्वाधीनता का जीवन हो, जहाँ उदारता का जीवन हो वहाँ कहाँ गरीबी?

लेकिन बड़े ही दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आज हम मानव होकर मानव-जीवन का कितना अनादर कर रहे हैं, कितनी असावधानी बरत रहे हैं, कितना अपने को धोखा दे रहे हैं। कोई कहता है धन बाँट दो गरीबी मिट जाएगी। कोई कहता है—धन छीन लो गरीबी मिट जाएगी। कोई कहता है कर्ज दे दो गरीबी मिट जाएगी। क्या तमाशा बना रखा है।

एक आदमी की गरीबी सारा संसार मिल कर मिटाना चाहे तो नहीं मिटा सकता और यदि आप अपनी गरीबी मिटाना चाहें तो अभी-अभी हम और आप अपनी गरीबी को मिटा सकते हैं। कैसे? बल का सदुपयोग करके, ज्ञान का आदर करके, निर्विकल्प विश्वास

करके हम अपनी गरीबी मिटा सकते हैं। क्यों ? बल के सदुपयोग से कर्त्तव्यपरायणता आ जाएगी। कर्त्तव्यपरायणता से हम राग-रहित हो जाएँगे, ज्ञान के आदर से हम निर्मम, निष्काम और असंग होकर क्रोध-रहित हो जाएँगे, विषमता-रहित हो जाएँगे, पराधीनता-रहित हो जाएँगे और आत्मीयता से जाग्रत प्रियता से नीरसता-रहित हो जाएँगे और इस प्रकार गरीबी मिट जाएगी।

गरीबी मिटाने का उपाय वैज्ञानिक के पास नहीं है। गरीबी मिटाने का उपाय किसी कलाकार के पास नहीं है। गरीबी मिटाने का उपाय किसी साहित्यिक के पास नहीं है। गरीबी मिटाने का उपाय तो मानव मात्र के पास है। वह क्या है? सत्संग। सत्संग से गरीबी मिटेगी। क्यों? अब इसको जरा वैज्ञानिक दृष्टि से सोचिए—वैज्ञानिक दृष्टि से। वैज्ञानिक तथ्य क्या है? आप अनुभव करके देखें। अगर हमारे जीवन में निर्लोभता आ जाती तो हम संग्रही होते क्या? बोलो, अनुदार होते क्या? अगर हमारे जीवन में निर्लोभता आ जाती तो हम भिखारी होते क्या? बोलो। भिखारी भी नहीं होते, अनुदार भी नहीं होते, संग्रही भी नहीं होते। जिसके जीवन में भिखारी-पन चला गया, अनुदारता चली गई, संग्रह चला गया, वहाँ गरीबी टिकेगी? क्या राय है? कभी भी नहीं रह सकती है। यह इतना जबरदस्त भ्रम है हम लोगों को।

एक बार एक अंग्रेज युवक हमारे मानव सेवा संघ आश्रम में आया। भिखारी वेश समझिए, साधु वेश समझिए। हम लोगों जैसे तो कपड़े नहीं थे। तो वह आश्रम में ठहरा रहा। हमारे यहाँ नियम है कि कोई ठहरना चाहे तो ठहर सकता है। हमने उससे कुछ नहीं कहा कि तुम हमारे सत्संग में बैठो या हमारी बात मानो। कोई उस पर पाबन्दी

नहीं डाली। तो उससे हमने प्रश्न कर दिया। हमने कहा कि तुमने कोई और ऐसा देश देखा है कि जिसके पास कुछ भी न हो और वह आराम से रह ले, जैसा कि हिन्दुस्तान में रहता है। ईमानदार आदमी था। उसने कहा, हमने ऐसा कोई देश नहीं देखा। यह हमारे गरीब देश की महिमा है।

अमेरिका में जाओ, इंग्लैण्ड में जाओ, चीन में जाओ। या तो सरकार की पैंशन खाओ या भूखे मर जाओ। एक आदमी अपरिचित चला जाए। एक आदमी ऐसा चला जाए जिसका सरकार से कोई सम्बन्ध न हो, तो वह भूखा मर जाएगा। तो अकेली सरकार अमीर हो गई और सब गरीब हो गए। सरकार दिन-रात माँग रही है। टैक्स पर टैक्स बढ़ते जाते हैं, टैक्स पर टैक्स बढ़ते चले जा रहे हैं।

मैं तो आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि यह गरीबी मिटाने का उपाय नहीं है। जो आप योरुप की नकल कर रहे हैं। टैक्स बढ़ाना तो आपने सीख लिया, सुविधा देना नहीं सीख पाया। अधिकार माँगना तो सीख लिया कर्त्तव्यपरायणता को भी अपनाया? अधिकार माँगने वाला सदा ही दरिद्र रहेगा। कभी उसकी दरिद्रता मिट नहीं सकती। कर्त्तव्यनिष्ठ की दरिद्रता मिटती है। कर्त्तव्यनिष्ठता का अर्थ है दूसरों के अधिकारों की रक्षा करो। यह कर्त्तव्यपरायणता का अर्थ है। अगर तुम दूसरों के काम आते रहोगे तो तुम्हारी दरिद्रता मिट जाएगी। अगर स्वयं काम-रहित हो जाओगे, तो तुम्हारी गरीबी मिट जाएगी।

अब ये जीवन के दो पहलू हैं। एक भौतिक जीवन है जो हमें प्रेरणा देता है कि दूसरों के काम आओ। और एक अध्यात्म जीवन है, जो हमें बताता है कि काम-रहित हो जाओ। काम-रहित होने की प्रेरणा हमें अध्यात्म-जीवन से मिलती है और उदार होने की प्रेरणा हमें भौतिक

जीवन से मिलती है। तो उदार भी आप हो सकते हैं और काम-रहित भी आप हो सकते हैं। और प्रेमी होने की प्रेरणा हमें ईश्वरवाद से मिलती है।

अगर आप भौतिकवादी हैं, तो भूखे रह कर, नंगे रह कर, कठिनाई सह कर दूसरों के काम आएँ और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, कि अगर तुम दूसरों के लिए बोलते हो, दूसरों के लिए सुनते हो, दूसरों के लिए सोचते हो, दूसरो के लिए काम करते हो तो तुम्हारी भौतिक उन्नति होती चली जाएगी। कोई बाधा नहीं डाल सकता। अगर तुम केवल अपने लिए सोचते हो तो दरिद्रता कभी नहीं जाएगी।

संसार में रहने का तरीका है—दूसरों के काम आने की सोचते रहो। काम आते रहो। यथाशक्ति काम आते रहो और काम आने की सोचते रहो। कितना अच्छा हो कि मैं संसार के काम आ जाऊँ। कितना अच्छा हो कि मैं अपने में सन्तुष्ट हो जाऊँ। कितना अच्छा हो कि मैं प्रेमी हो जाऊँ। तो संसार के काम आने में आप स्वाधीन, अपने में सन्तुष्ट होने में आप स्वाधीन, प्रेमी होने में आप स्वाधीन।

अगर आप संसार के काम आ गए तो गरीबी गई। अपने में संतुष्ट हो गए तो गरीबी गई और प्रेम से भरपूर हो गए तो गरीबी गई। तो गरीबी मिटाने का उपाय प्रत्येक भाई में, प्रत्येक बहन में जन्मजात मौजूद है। कहीं बाहर से कुछ नहीं मिलने वाला है। हाँ बाहर से जितना इकट्ठा करोगे, उतने ही भीतर से गरीब होते चले जाओगे।

हमने किसी पढ़े-लिखे के मुँह से सुना था कि अमेरिका में दो सौ जहाज हर समय देश पर घूमते रहते हैं। इस भय के मारे कि कहीं कोई देश हम पर आक्रमण न कर दे। यह भी कोई जीवन है, भय पीछा छोड़ता ही नहीं, अभय तुम हुए ही नहीं। जब तुम ही अभय नहीं हुए तो तुम्हारी सहायता हमें अभय कर देगी। बिल्कुल नहीं कर देगी।

हे मानव, तुम मानव होने के नाते सोचो। अपने जीवन में क्या क्रान्ति लाना है? तो यह क्रान्ति लाना है कि मैं उदार होकर संसार में रहूँगा, मैं स्वाधीन होकर रहूँगा, मैं प्रेमी होकर रहूँगा। और अगर आप उदार होकर रहना पसन्द करोगे, अगर आप स्वाधीन होंकर रहना पसन्द करोगे, आप प्रेमी होकर रहना पसन्द करोगे तो आप सच मानिए, आपके के जीवन में गरीबी नहीं रहेगी, आपके जीवन में अभाव नहीं रहेगा, आपके जीवन में नीरसता नहीं रहेगी। आपकी जितनी समस्याएँ हैं, सब हल हो जाएँगी।

लेकिन अगर आप यह सोचते हैं कि हम तो ऐसा तरीका सोच रहे हैं कि सारे संसार की सम्पत्ति हमारी हो जाए। सारे संसार की सम्पत्ति तो व्यक्तिगत हो नहीं जाएगी, लोभ के कारण जीवन में भयंकर दरिद्रता आ जाएगी। अगर आप सोचते हैं कि हमारा शरीर सदा बना रहे, तो मोह के कारण आप भय में आबद्ध हो जाएँगे। आप अभय नहीं हो जाएँगे। अमर जीवन आपको नहीं मिल जाएगा।

इसलिए भाई जो मिला हुआ सा लगता है, वह वास्तव में मिला हुआ है नहीं। मिला हुआ किसे कहते हैं? अपनी भाषा में कहें तो जो अलग न हो। जो अलग हो जाए, वह मिला हुआ कैसा? आप बताओ, ईमानदारी से तुमने जाग्रत में, स्वप्न में सुषुप्ति में—तीनों अवस्थाओं को सामने रख लो—जाग्रत में कोई ऐसी अवस्था, वस्तु, परिस्थिति देखी है, जो अलग न हो। स्वप्न में कोई ऐसी अवस्था, वस्तु, परिस्थिति देखी है, जो अलग न हो। सुषुप्ति में जो जड़ता आती है, उस जड़ता में जो देखा हो वह अलग न होता हो। जड़ता भी सदैव नहीं रहती। अवस्था, वस्तु, परिस्थिति भी सदैव नहीं रहती। जो सदैव रहता ही नहीं, उसे मिला कैसे मानते हो प्यारे ! वह मिला कैसे हो गया, जो सदैव रहेगा नहीं।

अभी जैसा दिखता है, वैसा है नहीं। तब भी कहते हो कि मुझे मिल गया, मुझे मिल गया! मुझे इतना धन मिल गया है, कि मेरा बैंक में एकाउण्ट इतना है। मैं तुम्हें चैलेंज देता हूँ कि बैंक में तुम्हारा एकाउण्ट रह जाएगा और वह तुम्हारे काम नहीं आएगा। या तो तुम ही छोड़ कर चल बसोगे या बैंक ही फेल हो जाएगा अभी या कभी। तो उसे मिला हुआ नहीं कहते जो सदैव न हो, सर्वत्र न हो, सभी के लिए न हो। वह मिला हुआ हो ही नहीं सकता। मिला हुआ वही हो सकता है, जो सदैव हो, सर्वत्र हो और सभी के लिए हो? उसी को मिला हुआ कह सकते हैं। जो सदैव नहीं है वह भी मिला हुआ नहीं है। जो सर्वत्र नहीं है, वह भी मिला हुआ नहीं, जो सभी के लिए नहीं, वह भी मिला हुआ नहीं। इसलिए संसार में कोई चीज हमें मिली है, यह बहुत बड़ा भ्रम है। यह भ्रम है, इस भ्रम को जीवन में से निकाल देना पड़ेगा। हाँ अगर सुनकर मानना चाहते हैं तो मानिए, कि जीवन अपने में है। जीवन का नाम परमात्मा रखा है, तो परमात्मा अपने में है। परमात्मा का नाम जीवन रखा है तो जीवन अपने में है। आपने जीवन का नाम शान्ति रखा है, तो शान्ति अपने में है और अगर जीवन का नाम स्वाधीनता रखा है, तो स्वाधीनता अपने में है, अगर जीवन का नाम अमरत्व रखा है तो अमरत्व अपने में है। अगर आपने अगाध अनन्त रस का नाम जीवन रखा है, तो अगाध अनन्त रस अपने में है। अगर सर्व दुःखों की निवृत्ति का नाम जीवन रखा है तो वह अपने में ही है। आपको जो चाहिए, वह आप में है। यह अध्यात्म जीवन कहलाता है। अध्यात्म जीवन माने अपना जीवन कहलाता है। यह जीवन अपना है और अभी है। जो अपने में है, अभी है वह अध्यात्म-जीवन कहलाता है।

तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि आप इस प्रकार की क्रान्ति अपने जीवन में लाइये कि शरीर के द्वारा, वस्तुओं के द्वारा, योग्यता के द्वारा कोई ऐसा काम नहीं करूँगा जो दूसरों के लिए अहितकर हो।

अगर आपको हित का काम नहीं करना है तो मैं आपको मजबूर नहीं करता। आप बिल्कुल मत कीजिए। आपके भलाई न करने से संसार की बहुत बड़ी हानि नहीं हो जाएगी, लेकिन बुराई मत कीजिए। अगर आप भलाई नहीं करेंगे तो आपकी एक हानि हो जाएगी कि आप संसार में आदर के योग्य नहीं रहेंगे। यह आपकी हानि हो जाएगी, लेकिन आपके भला न करने से संसार की कोई हानि नहीं होगी।

तात्पर्य क्या निकला? कि बुराई-रहित होने से संसार का लाभ होता है और भलाई करने से अपना व्यक्तिगत लाभ होता है। अगर आपको व्यक्तिगत लाभ चाहिए तो भलाई कीजिए लेकिन केवल भलाई से काम नहीं चलेगा। कुछ लाभ होगा, कुछ लाभ मिलेगा किन्तु आप अचाह हो जाइये, कुछ मत चाहिए, और उससे भी आगे का जीवन चाहिए तो प्रेमी हो जाइये। किसके? जिसको नहीं देखा है, उसके अथवा दूसरे शब्दों में कहें, सभी के। सभी के प्रेमी हो जाइये। सभी के प्रेमी होने पर जगत् और परमात्मा दोनों आ गए। जिसको नहीं देखा है उसके प्रेमी होने पर परमात्मा आ गया। तो आप प्रेमी हो जाएँगे, तो आपको जीवन मिलेगा। स्वाधीन हो जाएँगे तो आपको जीवन मिलेगा, आप अगर भले हो जाएँगे, तो आपको जीवन मिलेगा। अगर आप बुराई-रहित हो जाएँगे, तो आपको जीवन मिलेगा। जीवन आपको मिल सकता है। ये सभी बातें आपके हमारे जीवन में रह सकती हैं, आ सकती हैं। जब चाहे तब। अभी चाहें तो अभी आप सदा के लिए

बुराई-रहित हो सकते हैं। अभी चाहें तो भलाई कर सकते हैं। अभी चाहें तो अचाह हो सकते हैं। अभी चाहें तो प्रेमी हो सकते हैं। इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है।

तो मैं आपसे यह निवेदन कर रहा था कि जीवन का जो सबसे सुन्दर चित्र है, जीवन की जो सबसे अच्छी तस्वीर है, उसकी प्राप्ति में हम सब समान हैं। और जो भाई, परिस्थितियाँ हैं, वे तो पिता-पुत्र की भी एक नहीं हैं। पति-पत्नी की भी एक नहीं हैं। सहोदर बन्धुओं की भी एक नहीं हैं। ये जो एक नहीं हैं, वह साध्य नहीं है; साधन-सामग्री है। विचार कीजिए कि जिस चीज में भिन्नता है वह साध्य नहीं हो सकता। साध्य में भिन्नता नहीं होती, अभिन्नता होती है; एकता होती है। जिसमें भिन्नता है वह साध्य नहीं है; साधन-सामग्री है। साधन-सामग्री चाहे जैसी हो, उसका सदुपयोग करना होगा। उसके सदुपयोग से साध्य की प्राप्ति होगी। तो आपकी जो प्राप्त परिस्थिति है, जीवन नहीं है; साधन-सामग्री है।

प्रवचन 2

मेरे निजस्वरूप उपस्थित महानुभाव तथा भाई और बहन !

दर्शन का उतना महत्त्व नहीं है, जितना प्रेम का महत्त्व है। क्योंकि बिना प्रेम के तो दर्शन होगा नहीं। जैसे बिना बिजनेस के धन नहीं मिलता। धन से बिजनेस का महत्त्व अधिक है। अगर परमात्मा का प्रेम प्राप्त हो जाए, तो दर्शन कोई असम्भव बात नहीं है; सम्भव है। यदि प्रेम न हो और दर्शन हो जाए तो दर्शन का कोई लाभ नहीं होगा। हमारे और परमात्मा के बीच जो दूरी मिटाने वाली चीज है, वह प्रेम है।

अपना मानने से परमात्मा का प्रेम प्राप्त होता है। अपना मानना जो होता है वह तब होता है कि जिसको हम अपना मानें, उसका अपने पर पूरा अधिकार मान लें। यानी हमारे पास ऐसी कोई चीज न रह जाए जिस पर उसकी मुहर न लग जाए। तन उसका, मन उसका, धन उसका, प्राण उसके और वस्तु उसकी और वे मेरे। मुझे उनसे कुछ नहीं चाहिए। जब तक यह सत्य आप स्वीकार नहीं करेंगे तब तक अपनापन निर्जीव-सा रहेगा; सजीव नहीं होगा।

अपनेपन का अर्थ ममता नहीं है, क्योंकि ममता तो देखी हुई वस्तु की होती है। अपनेपन का अर्थ ममता नहीं आत्मीयता है। 'मेरे नाथ' में मेरे का अर्थ है अपना और नाथ का अर्थ है जो समर्थ हो और रक्षक हो। मेरे नाथ का वास्तविक अर्थ है—निश्चिन्तता, निर्भयता और प्रियता। जो अनाथ नहीं है; सनाथ है उसमें निश्चिन्तता, निर्भयता और प्रियता आनी चाहिए। ये तीनों चीजें आनी चाहिए तब 'मेरे नाथ' का ठीक अर्थ समझ में आता है। वैसे तो शब्द के पीछे जो अर्थ होता है वह माना हुआ ही होता है।

प्रश्न—निःसंकल्पता क्या है?

उत्तर—निःसंकल्प का अर्थ होता है—चाहे तो जगत् के संकल्प में अपना संकल्प मिला दो अथवा प्रभु के संकल्प में अपना संकल्प मिला दो तब निःसंकल्प होकर निर्विकल्प हो सकते हैं।

जगत् के संकल्प में अपना संकल्प मिलाना—यह धर्म-विज्ञान है और प्रभु के संकल्प में अपना संकल्प मिलाना—यह आस्तिकवाद है। निर्विकल्प होना—यह अध्यात्मवाद है। भौतिक का अर्थ क्या है? जगत् के अधिकार की रक्षा करना है अर्थात् जगत् का जो संकल्प है, उसको पूरा करना। आस्तिकवाद का अर्थ है—प्रभु के संकल्प में अपने संकल्प को मिला देना। अध्यात्मवाद क्या है? निर्विकल्प होना। अपने में संतुष्ट हों तो निर्विकल्प हों और निर्विकल्प हों तो अपने में संतुष्ट हों।

प्रभु के संकल्प क्या होते हैं, यह हमको मालूम नहीं है। अपना संकल्प न रखने का अर्थ है कि हे प्रभु, तेरी इच्छा पूर्ण हो। प्रभु की इच्छा क्या है, इसका हमें ज्ञान थोड़े ही है। वैसे तो प्रभु का दिया हुआ जो विवेक रूपी विधान है, वह विवेक-विरोधी हो ही नहीं सकता। वह तो विवेक के अनुरूप ही होगा।

विवेक रूपी विधान प्रभु ने ही दिया है। आस्था का तत्त्व भी प्रभु ने ही दिया है। बल का तत्त्व भी मिला ही है। मनुष्य के ऊपर जो जिम्मेदारी है, वह केवल मिले हुए के सदुपयोग की है। मनुष्य के पास जो कुछ है, वह उसका व्यक्तिगत तो है ही नहीं। मिली हुई वस्तु पर किसी का व्यक्तिगत अधिकार नहीं है।

सृष्टि का जो मालिक है, वही मनुष्य का मालिक है। मनुष्य को तो केवल यह स्वाधीनता है कि वह मिले हुए का सदुपयोग कर सकता है और उसी से उसका कल्याण हो सकता है।

विश्वास करना है तो परमात्मा में करो, जानना है तो अपने को जानो और करना है तो सेवा करो। यह मैं कहता हूँ, यह मेरा विचार है कि मानना परमात्मा को, जानना अपने को, करना सेवा। जग की सेवा, खोज अपनी, प्रेम उनसे कीजिए—यही मनुष्य का प्रोग्राम है।

सेवा का मतलब है—बुराई-रहित होना और यथाशक्ति भलाई करना। भलाई में यह नहीं बतलाया कि इतनी करो। यथाशक्ति, जो सम्भव हो और जिसके साथ सम्भव हो। अगर बिल्कुल सम्भव न हो तो बिल्कुल मत करो। केवल बुराई-रहित होने से ही सेवा सिद्ध हो जाएगी। भलाई करने से शरीर, परिवार, समाज की यथाशक्ति सेवा होगी। वैसे तो सारा संसार मिलकर भी किसी एक व्यक्ति के अभाव को दूर नहीं कर सकता। सेवा का अर्थ क्या है कि हम यथाशक्ति अपना सुख दूसरों को बाँट सकें। यह तो क्रियात्मक सेवा हुई, भावात्मक सेवा क्या हुई कि हम किसी को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाएँ। यह भावात्मक सेवा हुई।

सेवा जगत् के लिए उपयोगी है, प्रेम परमात्मा के लिए उपयोगी है और स्वाधीनता अपने लिए उपयोगी है।

संसार के सम्बन्ध में क्या है—विचार करके देखो। शरीर और संसार का अविभाज्य सम्बन्ध है। उन दोनों में विभाजन नहीं हो सकता। देखिए, शरीर जिस स्थिति में आज है इससे पहले इसकी वास्तविकता क्या थी? माता का रज और पिता का वीर्य। रज-वीर्य का पूर्व रूप क्या था? खुराक। खुराक का पूर्व रूप क्या था—पृथ्वी, जलवायु, आकाश आदि। अर्थात् जिस धातु से सृष्टि बनी है उसी धातु से आपका शरीर बना है, मेरा शरीर बना है। सारे संसार के शरीर उसी धातु से बने हुए हैं। तो शरीर संसार से अलग नहीं हो सकता। चाहे इसमें कितना ही परिवर्तन हो जाए, यह संसार में ही रहेगा। शरीर संसार से बाहर नहीं जा सकता, एक बात तो यह। दूसरी बात यह है कि शरीर के द्वारा हम दो बातें कर सकते हैं—या तो शरीर के द्वारा दु:ख-सुख का भोग कर सकते हैं। सुख का भोग हम करते हैं अपनी मर्जी से और दु:ख का भोग करना पड़ता है बेबसी से। या किसी के काम आ सकते हैं या तप कर सकते हैं। तप कर सकते हैं, सेवा कर सकते हैं, भोग कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त यदि ईमानदारी की दृष्टि से कहा जाए तो शरीर के द्वारा नित्ययोग बोध और प्रेम की प्राप्ति नहीं होती। आसन, प्राणायाम, धारणा आदि जो अष्टांग योग है, इसमें यम-नियम का भी महत्त्व है। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह शरीर का धर्म नहीं है। ईश्वर–प्रणिधान भी शरीर के द्वारा नहीं होता। नित्ययोग शरीर के द्वारा नहीं मिलता, स्वरूप का बोध शरीर के द्वारा नहीं हो सकता और प्रेम शरीर के द्वारा नहीं हो सकता। मनुष्य के जीवन में जो माँग है—चाहे योग कहो, चाहे चिरशान्ति कहो; बोध कहो या जीवन-मुक्ति कहो; प्रेम कहो चाहे भक्ति कहो तो जिस शान्ति मुक्ति और भक्ति की माँग है वह

शरीर के द्वारा प्राप्त नहीं होती। तो यह एक दृष्टिकोण आपकी सेवा में है।

इसलिए मैं आपसे निवेदन कर रहा था कि परमात्मा के सम्बन्ध में जो सुना या शरीर के सम्बन्ध में जो अनुभव हुआ—इन दोनों को सामने रख कर अब विचार करो। भगवान तो आस्था का विषय है; तर्क का विषय नहीं है। भगवान सब में है, इसका अर्थ यह लगाना चाहिए, हमारे विचार से कि अपने में है। परमात्मा सब में है, सर्वत्र है, सदैव है, समर्थ है और अद्वितीय है और सभी का है। सब में है तो उसे कहाँ-कहाँ पकड़ोगे? तुम किसी बहन से यह पूछना कि जब वे चावल पकाती हैं तो हँडिया के सब चावलों को देखती हैं या एक चावल को देख कर सारी हँडिया का ज्ञान हो जाता है, कि सारी हँडिया का चावल बन गया। सब में है इसका अर्थ है कि अपने में है।

मानव सेवा संघ का यह प्लेटफार्म है और उसकी प्रणाली के आधार पर मुझे चर्चा करना है। मानव सेवा संघ कोई नया मजहब नहीं है, कोई नया इज्म नहीं है, कोई नया संगठन नहीं है, कोई दल नहीं है। मानव मात्र का जो सत्य है, उसी का नाम मानव सेवा संघ का सिद्धान्त है। मानव सेवा संघ का सिद्धान्त क्या है? जो मानव का सत्य है। अब मानव का सत्य क्या है—इस पर विचार करके यदि देखें तो हम अपने में दो चीजें देखते हैं। एक तो संसार का आकर्षण—इसको काम कहते हैं और एक अविनाशी, स्वाधीन, रसरूप, चिन्मय जीवन की माँग—इसको राम कहते हैं।

मानव में केवल राम की माँग होती, तो कोई समस्या सामने न आती और केवल काम होता तब भी कोई समस्या नहीं आती। जैसे भोग-योनि में सुख-दुःख भोगने के सिवा और कुछ समस्या ही नहीं है

और उसमें प्राकृतिक बन्धन भी है। पशु बिना भूख नहीं खा सकता और भूखा भी नहीं रह सकता। उसकी खुराक उसके सामने हो, तो वह सोचेगा नहीं कि मेरी कमाई हुई है या नहीं, खा लेगा। लेकिन प्रकृति का बन्धन कितना जबरदस्त है कि बिना भूख नहीं खा सकता। देखिए, एक चिड़िया है, जो छोटे बच्चे को, अपने मासूम बच्चे के लिए अपने मुँह से दाना लाकर उसके मुँह में डाल देती है। एक सीमा तक उसकी ममता रहती है और जब बच्चा बड़ा हो जाता है तो चिड़िया उसकी परवाह नहीं करती है। लेकिन यहाँ तो लड़का बड़ा हो जाए और लड़के का लड़का बड़ा हो जाए और उसका लड़का बड़ा हो जाए किन्तु कई पुश्त तक उसकी ममता नहीं छोड़ते।

मनुष्य में और पशु में एक बड़ा भारी भेद यह है कि मनुष्य को कुछ बातों में स्वाधीनता है। किन बातों में स्वाधीनता है? सत्य को स्वीकार करने में अथवा असत्य को अस्वीकार करने में पूरी स्वाधीनता है। अब यदि इस स्वाधीनता का हम सदुपयोग न करके सत्य को स्वीकार न करें तो जीवन का क्या सत्य आया हमारे सामने। बहुत गंभीरता से विचार करें, तो यह साफ दिखाई देता है किसी भी वस्तु के साथ और व्यक्ति के साथ, किसी अवस्था और परिस्थिति के साथ हम सदैव नहीं रह सकते। इस बात को हर आदमी मान लेगा। जैसे जिस वाणी से मैं बोल रहा हूँ—क्या अनन्त काल तक बोल सकता हूँ? तो मैं बोलने से पहले चुप था और बोलने के बाद चुप हो जाऊँगा। तो कोई भी प्रवृत्ति अखण्ड नहीं हो सकती और किसी भी वस्तु से नित्य सम्बन्ध नहीं हो सकता।

वस्तु शब्द का यह अर्थ लेना चाहिए कि जिसकी उत्पत्ति हो, जिसमें परिवर्तन हो, जिसका विनाश हो उसको वस्तु कहते हैं। इस दृष्टि

से यह सारा संसार एक वस्तु है। इसका मतलब क्या हुआ कि मनुष्य सदैव संसार के साथ नहीं रह सकता। एक बात कर सकता है, कि जिसके साथ सदैव नहीं रह सकता, उसके साथ कोई बुराई न करें। उसकी ममता छोड़ दो, कामना छोड़ दो, तादात्म्य तोड़ दो, लेकिन सेवा करो, सद्भाव रखो, सहयोग करो, यहाँ तक आप स्वाधीन हैं। इसे कहते हैं—भौतिक विज्ञान।

यह दुनियादारी की बात है। इसके ऊपर की बात है कि जब हम संसार के साथ सदैव नहीं रह सकते तो हमको अपने में संतुष्ट होना चाहिए। यानी संयोग में वियोग का, जीवन में मृत्यु का, सुख में दुःख का दर्शन करके संसार से निर्मम, निष्काम और असंग होना चाहिए। यह अध्यात्मवाद हो गया। अर्थात् अपने में संतुष्ट हो जाना चाहिए। इसको और अच्छी शास्त्रीय भाषा में कहें तो हमको पहले निष्काम होकर योगवित् हो जाना चाहिए और योगवित् होकर आत्मवित् होना चाहिए और आत्मवित् होकर ब्रह्मवित् होना चाहिए।

ऐसी हमारी भारतीय परम्परा है। पहले हम कर्त्तव्यनिष्ठ हों अर्थात् जो करना चाहिए और जिसे कर सकते हैं वही करें। जो नहीं करना चाहिए सो न करें और जो नहीं कर सकते, वह न करें। जो आज यह कहते हैं कि कर्त्तव्यपालन में असमर्थ हो गए हैं—उनकी यह असमर्थता नाश हो जाएगी और जो कर सकते हैं तथा जो करना चाहिए, उसको करके हम संसार के राग से थोड़ा मुक्त होकर योगवित् हो जाएँ, अर्थात् योग की प्राप्ति कर लें फिर आत्मवित् हो जाएँ और फिर ब्रह्मवित् हो जाएँ। योगवित् होना यह भौतिकवाद है। आत्मवित् होना यह अध्यात्मवाद है और ब्रह्मवित् होना यह आस्तिकवाद है।

इसका अर्थ यह है कि आप में अगर ब्रह्मवित् होने की माँग नहीं है, तो छोड़ दीजिए औरों के लिए और आत्मवित् होना न चाहें तो छोड़ दीजिए उसे भी। योगवित् तो आपको होना ही पड़ेगा। क्यों? आप विचार करके देखिए कि आपका और जगत् का सम्बन्ध सेवा का सम्बन्ध है। सेवा का अन्त जो होता है वह त्याग में होता है और त्याग का जो फल होता है, वह योग होता है। योग एक ऐसा अनुपम तत्त्व है। गीता के हरेक अध्याय के साथ कौन-सी उपाधि दी गई है, कि वह योग का शास्त्र है और ब्रह्म की विद्या है। गीता के हर अध्याय के अन्त में यही कहा गया है। अर्जुन-कृष्ण का सम्वाद है, लेकिन योग का शास्त्र है और ब्रह्म की विद्या है।

तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि इस सुने हुए सत्य को जरा जीवन के साथ मिला कर देखिए तो मनुष्य योगशास्त्र और ब्रह्मविद्या का अधिकारी है। मानव योग का अधिकारी है। भोग जो उसके जीवन में है वह केवल साधन रूप है; साध्य रूप भोग नहीं है। लेकिन मनुष्य को छोड़ कर अन्य भोग योनियों में न ब्रह्मविद्या है न योगशास्त्र है। तो मैं यह निवेदन कर रहा था आप महानुभावों से कि वह काम, जिसे किए बिना आप रह नहीं सकते; जिसमें किसी का अहित नहीं है वह कार्य जिसका सम्बन्ध वर्तमान से है, वह कार्य जिसके पूरा करने की सामर्थ्य है। जिस कार्य में ये चार बातें हैं—कौन-कौन-सी-वर्तमान का कार्य हो, जैसे कि इस समय मेरा काम बोलना है, आपका काम सुनना है, यह वर्तमान का कार्य हो गया। ऐसी कोई बात नहीं बोलना चाहिए, जिससे किसी का अहित हो। बिना बोले रहा जाए तो बोलने की जरूरत नहीं। बोले बिना न रहा जाए तो बोलो, अहित न हो और जिसे पूरा करने की स्वाधीनता हो, वर्तमान से सम्बन्ध हो, किसी का अहित न हो, उसको

आवश्यक कार्य कहते हैं। उसको कर्त्तव्य कहते हैं; उसको धर्म कहते हैं।

इस धर्म के पालन करने का फल क्या होता है कि हम कार्य के अन्त में करने के राग से रहित होकर शान्ति को प्राप्त करते हैं और जब हमारे जीवन में करने का राग नहीं रहता तो क्या होता है? न तो हमारा स्थूल शरीर से तादात्म्य रहता है, न सूक्ष्म शरीर से तादात्म्य रहता है। इन दोनों शरीरों से तादात्म्य टूट जाता है। स्थूल शरीर से तादात्म्य टूटने से निवृत्ति आ जाती है और सूक्ष्म शरीर से तादात्म्य टूटने से अचिन्तता आ जाती है। निवृत्ति और अचिन्तता, लेकिन कारण शरीर के द्वारा हम योग को प्राप्त करते हैं। कारण शरीर का लेश योग में रहता है । समाधि तक कारण शरीर का तादात्म्य रहता है। बोध में जाकर कारण शरीर की निवृत्ति होती है और प्रेम में जाकर परमात्मा की प्राप्ति होती है।

तो हमें कर्त्तव्य से योग की ओर, योग से बोध की ओर और बोध से प्रेम के द्वारा परमात्मा को प्राप्त करना है। इसी के लिए हमें योगवित् होना होता है। 'जग की सेवा, खोज अपनी, प्रेम उनसे कीजिए।' मतलब क्या कि कर्त्तव्य का पालन कीजिए, अपनी खोज कीजिए और परमात्मा से प्रेम कीजिए।

मैं शरीर नहीं हूँ, यह सर्वमान्य सत्य है। शरीर संसार का एक अंग है। मेरा नहीं है; उसका है, जिसका संसार है लेकिन हम भूल से शरीर को अपना मान लेते हैं और संसार को अपना मानते नहीं। इसका परिणाम क्या होता है? कि शरीर में ममता हो जाती है; संसार की कामना उठने लगती है। अगर शरीर को और संसार को हम एक मान लें—यह मान लें कि अगर शरीर मेरा नहीं है तो संसार में कोई चीज

मेरी नहीं है। शरीर मेरा नहीं है तो संसार मेरा नहीं है। शरीर को अपना मानूँ सेवा करने के लिए और संसार को भी अपना मानूँ सेवा करने के लिए। अब हमसे गलती क्या होती है कि शरीर को हम अपना मानते हैं भोग के लिए। बस मानव की यही सबसे बड़ी भूल है। शरीर का उपयोग मानव होकर हम केवल भोग में ही करेंगे तो परिणाम में रोग और शोक से बचेंगे नहीं। सुख के भोगी को विवश होकर दुःख भोगना पड़ता है। इसमें किसी का बस आज तक चला नहीं और भविष्य में भी चलेगा नहीं। इसलिए यह कहा गया कि शरीर का उपयोग भोग में मत करो; सेवा में करो।

सेवा का बाह्य रूप क्या है—दूसरों के अधिकार की रक्षा करो। यह सेवा का बाह्य रूप है। त्याग का रूप क्या है कि अपने अधिकार का त्याग करो। तो दूसरों के अधिकार की रक्षा करने से परस्पर एकता होगी और अपना अधिकार छोड़ने से नित्य योग की प्राप्ति हो जाएगी।

संसार में सम्बन्ध दो ही तरह से रहता है—देना है तब भी सम्बन्ध रहेगा; लेना है तब भी सम्बन्ध रहेगा। देना दे दिया और लेना छोड़ दिया तो संसार से सम्बन्ध टूट जाता है। जब संसार से सम्बन्ध नहीं रहता तो हमारे और परमात्मा के बीच में; हमारे और अविनाशी जीवन के बीच में; हमारे और स्वाधीन जीवन के बीच में; हमारे और चिन्मय जीवन के बीच में पर्दा क्या था, आवरण क्या था? संसार का सम्बन्ध आवरण था; संसार आवरण नहीं था।

जब सम्बन्ध टूट गया, तो हमें योग प्राप्त हो गया, बोध प्राप्त हो गया, प्रेम प्राप्त हो गया। यह कोई कल्पना नहीं है; यह जीवन का सत्य है। अगर हमारे और संसार के बीच का सम्बन्ध टूट जाए, जो वास्तव में है नहीं। हमारा और परमात्मा का जातीय सम्बन्ध है, नित्य सम्बन्ध है

और आत्मीय सम्बन्ध भी है। हमारा और संसार का न जातीय सम्बन्ध है, न नित्य सम्बन्ध है, न आत्मीय सम्बन्ध है।

तो क्या है? मेरे पास जो शरीर है, वह संसार की धरोहर है। जगत् का जो मालिक है, जगत् का जो आधार है, वह परमात्मा है। इसलिए परमात्मा के नाते जगत् की सेवा करें, तो प्रत्येक प्रवृत्ति पूजा हो गई, आत्मा के नाते जगत् की सेवा करें तो साधना हो गई और जगत् के नाते जगत् की सेवा करें तो कर्त्तव्य हो गया।

अब यह आपकी अपनी मौज है आप स्वाधीन हैं। चाहे आप भौतिकवादी दृष्टिकोण से जगत् के अस्तित्व को ही मानें; अध्यात्मवादी दृष्टिकोण से आत्मा के अस्तित्व को मानें, चाहे आस्तिकवादी दृष्टिकोण से आप परमात्मा को मानें—यह आपकी स्वाधीनता है। जगत् के अस्तित्व को मान कर भी कर्त्तव्य का अन्त योग में होगा। आत्मा के अस्तित्व को मान कर भी कर्त्तव्य का अन्त योग में होगा और परमात्मा के अस्तित्व को मान कर भी कर्त्तव्य का अन्त योग में होगा। यह जीवन का विज्ञान है।

सही काम करने से हमें योग प्राप्त होता है—यह जीवन का विज्ञान है। ईश्वरवादी दृष्टि से योग का अर्थ है—परमात्मा की समीपता और अध्यात्मवाद की दृष्टि से योग का अर्थ है—अपने स्वरूप का बोध; अपने स्वरूप में स्थिति। भौतिकवाद की दृष्टि से योग का अर्थ है चिरशान्ति।

चिरशान्ति, स्वरूप में स्थिति, परमात्मा की समीपता। किसी प्रकार से सत्य को स्वीकार करें तो मुझे तीन बातें ही ठीक मालूम होती हैं। या तो हम को चिरशान्ति प्राप्त हो गई अथवा अपने स्वरूप में स्थिति हो गई अथवा परमात्मा की समीपता प्राप्त हो गई। परमात्मा की

समीपता, स्वरूप में स्थिति और चिरशान्ति का नाम योग है।

व्यक्तिगत भिन्नता जीवन का एक सत्य है। अब यह आग्रह मत करो कि मैं परमात्मा को मानता हूँ तो सभी परमात्मा को मान लें। मैं संसार को मानता हूँ, तो सारा संसार भौतिकवादी बन जाए। सारा संसार अध्यात्मवादी बन जाए या सारा संसार आस्तिकवादी बन जाए। मानव सेवा-संघ की साधन प्रणाली में यह बात बताई गई कि ऐसा आग्रह मत करो।

हाँ, तुम स्वतन्त्र हो, भौतिकवादी होकर संसार के साथ कर्त्तव्य का सम्बन्ध रख सकते हो। कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, चिरशान्ति आपको मिलेगी। अध्यात्मवादी होकर भी संसार के साथ कर्त्तव्य का सम्बन्ध रख सकते हो—जीवन—मुक्ति आपको मिलेगी। और परमात्मा को मान कर भी कर्त्तव्य का सम्बन्ध रख सकते हो, तो भी भक्ति मिलेगी। तो चिरशान्ति, जीवन-मुक्ति और भगवद्भक्ति आरम्भ में ये तीनों अलग-अलग मालूम होते हैं साधन रूप से, किन्तु अन्त में तीनों में स्वरूप से एकता हो जाती है।

चिरशान्ति, जीवन-मुक्ति और भगवद्भक्ति में अविभाज्य सम्बन्ध है। शान्ति है, तो मुक्ति आ ही जाएगी, जहाँ मुक्ति है वहाँ भक्ति आ ही जाएगी। यह मेरा अपना व्यक्तिगत मत है।

प्रवचन 3

मेरे नाथ, आप अपनी सुधामयी, सर्वसमर्थ, पतित-पावनी, अहैतुकी कृपा से दुखी प्राणियों के हृदय में त्याग का बल तथा सुखी प्राणियों के हृदय में सेवा का बल प्रदान करें, जिससे वे सुख-दुःख के बन्धन से मुक्त हो आपके पवित्र प्रेम का आस्वादन कर कृतकृत्य हो जाएँ।

मेरे निजस्वरूप उपस्थित महानुभाव तथा भाई और बहन!

अभी हमने और आपने जो प्रार्थना की है, उसमें क्या रहस्य है, उसका वास्तविक क्या तत्त्व है, अब उस पर विचार करना है। ऐसा कोई व्यक्ति है ही नहीं, जिसके जीवन में किसी न किसी प्रकार की माँग न हो। किसी आवश्यकता का होना ही वास्तव में प्रार्थना है।

कुछ लोग यह सोचते हैं कि प्रार्थना तो केवल ईश्वरवादियों की वस्तु है, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। प्रार्थना तो प्राणी मात्र की वस्तु है। क्यों? क्योंकि कोई ऐसा व्यक्ति है ही नहीं, जिसके जीवन में कोई न कोई आवश्यकता न हो। अपनी आवश्यकता को जानना ही वास्तव में प्रार्थना है।

कुछ लोग कामनाओं को ही आवश्यकता मान लेते हैं, परन्तु जो विचारशील हैं, वे इस बात को जानते हैं कि कामना और आवश्यकता में बड़ा भेद है। कामना की तो निवृत्ति होती है अथवा उसमें प्रवृत्ति होती है, किन्तु आवश्यकता की पूर्ति होती है।

अब आप विचार करें, कि जो प्रार्थना अभी आपने की, उसमें सबसे पहला वाक्य है—मेरे नाथ। इस वाक्य के उच्चारण करते ही ऐसा हृदय में भास होता है कि हम अनाथ नहीं हैं, कोई हमारा अपना है और जो हमारा अपना है, वह कैसा है? वह समर्थ है, रक्षक है। अब आप सोचिए कि समर्थ और रक्षक के होते हुए हमारे और आपके जीवन में चिन्ता और भय का कोई स्थान ही नहीं रहता।

यह सभी जानते हैं, कि निश्चिन्तता और निर्भयता आने पर ही हम प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग कर सकते हैं। भयभीत और चिन्तित होने पर हम अपनी परिस्थिति का सदुपयोग नहीं कर सकते हैं। और परिस्थिति का सदुपयोग किए बिना न तो उत्कृष्ट परिस्थिति ही प्राप्त होती है और न ही परिस्थिति की दासता से मुक्त होते हैं। इस दृष्टि से जो व्यक्ति जिस परिस्थिति में है, उसका सदुपयोग करना ही होगा। और उसका सदुपयोग करने के लिए निश्चिन्तता और निर्भयता अनिवार्य है। निश्चिन्त और निर्भय होने के लिए यह आवश्यक है कि हम उससे अपना नित्य सम्बन्ध स्थापित करें जिससे हमारी उत्पत्ति हुई है। जिसमें हमारी स्थिति है, उससे हमें अभिन्न होना है।

ऐसी कोई उत्पत्ति हो ही नहीं सकती, जिसके मूल में कोई अनुत्पन्न तत्त्व न हो। इस दृष्टि से हम सबको यह मानना ही पड़ेगा कि जिससे हमारी उत्पत्ति हुई है, वह हमारी उत्पत्ति से पूर्व है। चाहे उसको जाने अथवा न जानें, मानें अथवा न मानें, परन्तु वह है अवश्य, जिससे हमारी उत्पत्ति हुई है।

एक यह भी नियम है, कि जिससे हमारी उत्पत्ति हुई है, उसको हम प्राप्त कर सकते हैं; उसमें हम श्रद्धा रख सकते हैं, उससे हम सम्बन्ध जोड़ सकते हैं, परन्तु उसे हम मन-बुद्धि का विषय नहीं बना सकते। क्योंकि कार्य कारण में विलीन हो सकता है, कार्य कारण को विषय नहीं कर सकता। यह बात सभी विचारशीलों को माननी ही पड़ेगी।

इस दृष्टि से उसे हम जानें या न जानें, परन्तु उसका होना स्वतः सिद्ध है। अब आप विचार कीजिए कि जो है, वह हमारा अपना है। यह नियम ही है कि जिससे आत्मीयता होती है, उसमें प्रियता अपने आप हो जाती है। प्रियता स्वभाव से ही रसरूप है। यह बात सभी के अनुभव में है। आप सोचिए, जिसे आप अपना मानते हैं, क्या वह आपको प्यारा नहीं लगता? और जो प्यारा लगता है क्या उसमें आपको रस नहीं आता? आत्मीयता प्रेम की जननी है और प्रेम रस का भण्डार है।

इस दृष्टि से जब हमने उसको अपना मान लिया, जिससे समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई है, जिससे समस्त सृष्टि प्रकाशित है, जिससे समस्त सृष्टि, सत्ता पाती है। तो आप सोचिए, हमारे और आपके जीवन में चिन्ता और भय का कोई स्थान ही नहीं रह जाता।क्यों? जो सबका सबकुछ है, वह हमारा अपना ही है। तो जो हमारा अपना है, उससे हमारी कोई भी बात छिपी नहीं है।

फिर अब आप कहेंगे तो फिर प्रार्थना की आवश्यकता ही क्या है? प्रार्थना की आवश्यकता तो इसलिए है क्योंकि हम स्वयं अपनी आवश्यकता से अपरिचित हो जाते हैं। बहुत कम भाई-बहन ऐसे हैं, जो सचमुच यह जानते हैं, कि हमारी वास्तविक आवश्यकता क्या है। बहुत

से लोग तो मन में उत्पन्न हुई कामनाओं को ही अपनी आवश्यकता मानते हैं।

आप विचार करें, जरा गम्भीरता से विचार करें कि कामनाओं का उद्‌गम-स्थान तो देहाभिमान है। और देहाभिमान अविवेक-सिद्ध है, विवेक सिद्ध नहीं है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अविवेक-सिद्ध कामनाओं से, अविवेक के द्वारा उत्पन्न हुई कामनाओं से, जो असत् हैं, उन्हें हम अपनी आवश्यकता नहीं कह सकते, अपितु एक दशा विशेष कह सकते हैं।

कामना हमारी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि कामना का उद्‌गम-स्थान 'यह' है 'मैं' नहीं। आप सोचिए अभी हम आपसे पूछें कि शरीर से अलग होकर आप क्या चाहते हैं, तो आप कोई भी कामना नहीं बता सकते। तात्पर्य यह निकला कि भाई, कामना कब उत्पन्न होती हैं? जब हम अपने को देह मान लेते हैं। अब आप विचार कीजिए कि अपने को देह मान लेना क्या अपने विवेक का विरोध नहीं है? आपको मानना पड़ेगा, अवश्य है। क्योंकि जिसको 'यह' कह करके सम्बोधन करते हैं, उसको 'मैं' नहीं कह सकते। जैसे आप कहें 'मेरा मकान' तो कम से कम यह तो आप जानते ही हैं कि मैं मकान नहीं हूँ। तो 'मेरा शरीर' यह भी बात आप जानते हैं। तो आप ही बताइये कि आप अपने ज्ञान के अनुसार अपने को शरीर नहीं मान सकते। आपको मानना ही होगा कि शरीर हमसे भिन्न है।

जो चीज जानने में आती है, वह जानने वाले से अलग होती है। जो चीज देखने में आती है, वह देखने वाले से अलग होती है। हाँ, इतना ही नहीं, जिन साधनों से हम देखते हैं, सुनते हैं, सोचते हैं वे साधन भी हमसे अलग हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि भाई, शरीर,

इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण आदि जितनी वस्तुएँ हैं उनको 'मैं' नहीं कह सकते।

आप कहें कि 'मैं' तो नहीं कह सकते किन्तु 'मेरा' तो कह सकते हैं। तो कहना होगा कि जैसे ड्राइवर किसी की मोटर को मेरी मोटर कह देता है, उसी प्रकार बोलचाल की भाषा में हम भले ही कहें कि शरीर मेरा है, हाथ मेरा है। पर भाई, सोचो तो सही कि क्या शरीर का विश्व से विभाजन हो सकता है? आपको मानना पड़ेगा नहीं हो सकता। यदि शरीर आपका नहीं, उसी प्रकार जिस संसार रूपी सागर की शरीर एक लहर है, वह भी आपका नहीं है। इसमें आपके विवेक का विरोध है। तो कहना होगा कि शरीर हमारा है नहीं, किन्तु उसके उपयोग मात्र में हमारा अधिकार है।

तो जिसने हमें शरीर के उपयोग का अधिकार दिया, उसने हमारी ईमानदारी पर विश्वास किया है और उसके उपयोग करने का विवेक भी दिया है। तात्पर्य यह निकला कि मिली हुई कोई भी वस्तु हमारी नहीं है और न कोई भी वस्तु हम हैं, अपितु किसी वस्तु के उपयोग करने में आपका अधिकार है। इसको ही कर्त्तव्यनिष्ठ प्राणी कर्त्तव्य के नाम से कहते हैं। धर्मात्मा इसे धर्म के नाम से कहते हैं। मान्यता का भेद है अर्थ का कोई भेद नहीं है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जो वस्तु, सामर्थ्य, योग्यता हमें प्राप्त है उसका उपयोग हमें अपने विवेक के अधीन करना है अथवा यों कहो कि उस मिले हुए विवेक के प्रकाश में ही हमें मिली हुई सामर्थ्य का सदुपयोग करना है।

परन्तु आप जानते हैं, ऐसा कौन व्यक्ति है, जो असमर्थता का अनुभव नहीं करता, ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसके सामने मृत्यु का भय नहीं है, ऐसा कौन व्यक्ति है, जिससे कभी विवेक का विरोध नहीं हुआ।

मानना ही पड़ेगा कि हमारे आपके सामने ये तीन समस्याएँ हैं—मृत्यु का भय, सामर्थ्य की माँग और पवित्र होने की आवश्यकता। इन तीन दुर्बलताओं को सामने रखकर जब हम सोचते हैं, तो इस बात के लिए विवश हो जाते हैं कि, जिससे हमारी उत्पत्ति हुई है, जो हमारा अपना है, जिससे हमारा नित्य सम्बन्ध है, उसके सामने अपनी आवश्यकता को प्रकट करें। किस लिए? इसलिए नहीं कि वे हमारी आवश्यकता को नहीं जानते, इसलिए कि हम स्वयं अपनी आवश्यकता को भूलकर कामनाओं के जाल में आबद्ध हो रहे हैं। इस दृष्टि से यदि आप और हम विचार करेंगे तो हमें—आपको मानना ही पड़ेगा कि आज जीवन का सबसे पहला प्रश्न है कि हम अपनी आवश्यकता को जानें अर्थात् हम क्या चाहते हैं, इस बात को हम ठीक-ठीक समझ लें।

आप सोचिए, माँगने का अधिकार किसको होता है? जिसकी आवश्यकता हो, वही तो माँगता है। जैसे भूख लगने पर भोजन माँगना कोई अनुचित बात नहीं अथवा यों कहें कि भूख लगना ही भोजन को माँगना है, प्यास का लगना ही पानी का माँगना है। और जिसके सामने माँगना है, वह कोई अप्राप्त तो है नहीं, वह तो प्राप्त है। क्योंकि जिससे हमारी उत्पत्ति हुई है, यदि वह न हो तो हमारी उत्पत्ति ही सिद्ध नहीं होगी और हमारी स्थिति ही सिद्ध नहीं होगी। वह हमारे साथ है और सर्वदा साथ है। ऐसा कोई-सा क्षण नहीं है, जब वह हमारे साथ न हो। परन्तु हम इस बात को इतना भूल गए हैं कि अपने को अनाथ अनुभव करने लगे हैं, वास्तव में अनाथ हैं नहीं।

इसलिए उपर्युक्त प्रार्थना में पहला वाक्य है—'मेरे नाथ'। 'मेरे नाथ' कहते ही एक आत्मीयता की और नित्य सम्बन्ध की स्थिति हो जाती है। आप विचार करें कि आत्मीयता में प्रियता स्वाभाविक है।

और जब हम जानते हैं कि हमारा नाथ समर्थ और रक्षक है, तो चिन्ता और भय के लिए कोई स्थान ही नहीं रहता और न किसी प्रकार का संकोच रह जाता है।

अब यह भी विचार करना है, कि जिससे हमें माँगना है, उसकी महिमा क्या है। उसमें हमारी श्रद्धा है या नहीं। हम उस पर विश्वास करते हैं या नहीं। तो भाई, प्रार्थी तो कोई ऐसा नहीं होता, जो उस पर विश्वास न करे, जिससे प्रार्थना कर रहा है। उसकी महिमा न माने, जिससे प्रार्थना कर रहा है। चाहे वह अपनी वाणी के द्वारा उसकी महिमा को प्रकट न करे, चाहे वह वाणी के द्वारा न कहे कि आप ऐसे हैं। परन्तु उसके जीवन में यह बात स्वभाव से होती है कि जब हम माँगते हैं तो किसी से माँगते हैं। जिससे माँगते हैं, उसको अलग नहीं कह सकते, उसको अलहदा नहीं कह सकते, उसको यह नहीं कह सकते कि वह अपना नहीं है।

अत: प्रार्थना का उदय होना ही इस बात को सिद्ध करता है कि जिससे हम प्रार्थना कर रहे हैं, वह अपना ही है और समर्थ है। अब विचार यह करना है कि समर्थ से, उस अपने से हम क्या माँगें। प्रार्थना में उसकी महिमा के सम्बन्ध में चार विशेषण हैं। उसमें बताया है कि मेरे नाथ जो हैं, जो समर्थ हैं, जो रक्षक हैं, जो हमारे अपने ही हैं। उनकी कृपा में चार बातें बताईं—अहैतुकी, सुधामयी, सर्वसमर्थ और पतित-पावनी। अब, आप विचार करें कि हमारे जीवन की निर्बलताएँ कितनी हैं? जीवन की माँग, सामर्थ्य की माँग और पवित्र होने की माँग।

जो हमारे अपने हैं उनकी कृपा की महिमा में चार विशेषण हैं। पहला विशेषण है—सुधामयी अर्थात् जीवन देने वाली। दूसरा विशेषण

है—सर्वसमर्थ अर्थात् सामर्थ्य देने वाली। तीसरा विशेषण है—पतित-पावनी अर्थात् पवित्र करने वाली और चौथा विशेषण है—अहैतुकी। अहैतुकी होने से हम सब प्रार्थना के अधिकारी हो जाते हैं।

इस प्रार्थना में यह नहीं बताया गया कि कृपा उन्हीं पर होगी, जो उनको मानते हैं अथवा जो उन्हें जानते हैं, अपितु यह बताया गया कि उनकी कृपा जो है, अहैतुकी है अर्थात् अहैतुकी होने से हम सब उस कृपा के अधिकारी हो जाते हैं।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या माँगें और किसके लिए माँगें। यदि हम व्यक्तिगत अपने लिए माँगते हैं, तो व्यक्तिगत का तो अस्तित्व ही नहीं है। क्योंकि शरीर हम हैं नहीं। अगर हम शरीर के लिए माँगते हैं तो शरीर और विश्व का विभाजन हो सकता नहीं। इसलिए प्रार्थना में इस बात का ध्यान रखा गया है कि हम अपने लिए नहीं माँगेंगे, सभी के लिए माँगेंगे। अर्थात् सारे विश्व के साथ एकता स्वीकार कर ली गई। तो माँगा क्या? यह नहीं माँगा गया कि हमारे जीवन में जो सुख है, वह बना रहे, जो दुःख है, वह चला जाए। यह नहीं माँगा। माँगा क्या? कि दुखी प्राणियों के हृदय में त्याग का बल और सुखी प्राणियों के हृदय में सेवा का बल।

अब आप विचार करें कि दुखी प्राणियों के हृदय में त्याग के बल की माँग क्यों की गई। सोचिए, जरा गम्भीरता से सोचिए कि दुःख है क्या। दुःख क्या है, इस प्रकार आप विचार करेंगे तो मानना पड़ेगा कि आप जब कुछ चाहते हैं और चाह जब पूरी नहीं होती, तभी आप दुःख का अनुभव करते हैं। अर्थात् हम जो चाहते हैं, वह होता नहीं, जो होता है, वह भाता नहीं और जो भाता है, वह रहता नहीं। यह बात जब हमारे-आपके सामने आती है, तब हम कहते हैं कि हम तो बड़े दुखी हैं। क्यों? क्योंकि जो बात हम चाहते हैं, वह हुई नहीं। आप गंभीरता

से सोचिए, क्या संसार में कोई ऐसा व्यक्ति है, जिसके विषय में जिसके सम्बन्ध में आप कह सकें, कि उसकी सभी कामनाएँ पूरी हो गईं? क्या कोई ऐसा व्यक्ति है, जिसके सम्बन्ध में आप कह सकें कि उसकी कोई कामना पूरी नहीं हुई।

मेरा विचार ऐसा है, मैंने ऐसा सुना है, समझा है, सोचा है, मुझे ऐसा मालूम होता है, कि ऐसा व्यक्ति तो मिल सकता है, जिसकी सभी कामनाएँ नाश हो गई हों, जिसकी जिज्ञासा पूरी हो गई हो, जिसको प्रेम की प्राप्ति हो गई हो, परन्तु ऐसा व्यक्ति नहीं मिल सकता कि जिसके लिए आप कह सकें कि उसकी सभी कामनाएँ पूरी हो गईं। सोचिए, जरा गम्भीरता से सोचिए कि जब सभी कामनाएँ पूरी नहीं हो सकतीं तो इससे यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि कामना-पूर्ति मात्र हमारे-आपके जीवन का लक्ष्य नहीं है। अर्थात् आपकी-हमारी यह वास्तविक आवश्यकता नहीं है।

यह अवश्य कह सकते हैं कि कामना-पूर्ति का जीवन में स्थान है और कामना-अपूर्ति का भी जीवन में स्थान है। यह किस लिए है? कामना-पूर्ति किस लिए है? कामना-निवृत्ति के लिए और कामना-अपूर्ति किस लिए है? कामना—निवृत्ति के लिए। जब हम और आप इस बात को भली-भाँति जान लेते हैं कि कामना-पूर्ति भी कामना-निवृत्ति के लिए है और कामना-अपूर्ति भी कामना-निवृत्ति के लिए है, तब हमको, आपको यह मानना ही पड़ेगा कि आप जिस कामना-आपूर्ति से दुखी हैं, यदि उस कामना के त्याग का बल आपके जीवन में आ जाए, तो भाई, दुःख जैसी कोई वस्तु जीवन में रह नहीं जाती।

कल्पना करो कि एक अन्धा व्यक्ति देखना चाहता है और सारा संसार मिलकर उसकी सहायता करे, जब तक देखने की शक्ति उसे न

मिले तो किसी और की सहायता से वह उस कामना को पूरा नहीं कर सकता। लेकिन यदि वह विचार करे और यह सोचे कि गहरी नींद में तो सभी अन्धे होते हैं। तब यदि छह घण्टे हम बिना देखे रह सकते हैं, तो आजीवन बिना देखे रह सकते हैं, अथवा देखते-देखते भी आखिर न देखना ही होता है। ऐसी कोई कामना है नहीं, जिसकी पूर्ति अखण्ड हो, जो सदैव पूरी हो सके, यह बात सब को माननी ही पड़ती है। तो भाई, अन्धे हो जाने पर देखने की वासना का त्याग करना कोई कठिन बात नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि भाई, किसी का दुःख तभी मिट सकता है, जब उसमें त्याग का बल आ जाए। नहीं तो सारा संसार मिलकर एक व्यक्ति के दुःख का भी नाश नहीं कर सकता।

आप अपना सुख बाँट सकते हैं, पर आप दुःख मिटा सकते हैं, यह किसी के बस की बात नहीं है। आप कहेंगे कि व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता लेकिन जो व्यक्ति नहीं है जो सब प्रकार से समर्थ है वह तो ऐसा कर सकता है। तो भाई मेरे, उसी का तो विधान है कि दुःख में त्याग का बल हो। यह व्यक्ति का निर्णय थोड़े ही है कि दुःख में त्याग का बल हो। त्याग के बल से दुःख का भय चला जाता है। दूसरी बात आप जो यह सोचते हैं कि दुःख जीवन का आवश्यक अंग नहीं है, यह बड़े ही प्रमाद की बात है। भाई मेरे, सुख की अपेक्षा दुःख कहीं अधिक जीवन का आवश्यक अंग है। यदि आप सत्य पर विचार करेंगे तो जीवन का आरम्भ दुःख से है, सुख से नहीं। बालक जब उत्पन्न होता है तो रोता है, अगर कोई बालक इत्तेफाक से ऐसा हो, जो न रो रहा हो, तो सोचना चाहिए कि उसमें किसी प्रकार की कमी है, किसी प्रकार की अपंगता है, यह एबनॉर्मल है। नॉर्मल बालक जो भी होगा, वह पैदा होते ही रोएगा। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जीवन का आरम्भ दुःख से

हुआ है। जिस जीवन का आरम्भ ही दुःख से हुआ है, उस जीवन में किसी प्रकार का दुःख न हो, यह सोचना ही बेकार है।

लेकिन एक बात अवश्य है कि जिस परिवर्तनशील जीवन में हम दुःख का अनुभव करते हैं वह वास्तव में जीवन नहीं है। जीवन की तो माँग है, जीवन की तो आवश्यकता है। और वह जीवन की आवश्यकता कैसे पूरी होगी? कि जब हम दुःख में क्या करना चाहिए यह मान लें, सुख में क्या करना चाहिए, यह मान लें।

इस मूल सत्य को सामने रख कर इस प्रार्थना में यह कहा गया है, कि जो हमारे अपने हैं, जिनकी कृपा अहैतुकी है, सर्वसमर्थ है, जीवन देने वाली है, पवित्र करने वाली है, उनसे हमने क्या प्रार्थना की है, कि हम सब एक हैं और सारी सृष्टि एक है। सबके साथ एकता की बात रख कर दुखी प्राणियों में त्याग के बल की प्रार्थना की। दुखियों में त्याग का बल आ जाए—इसमें यह तो नहीं कहा गया कि आपके विधान के अनुसार जो हमारे जीवन में दुःख है, वह चला जाए। दुःख भले ही बना रहे, उसके साथ त्याग का बल आ जाए। त्याग का बल आने से आया हुआ जो दुःख है, वह निर्जीव हो जाएगा। अथवा यों कहें, कि दुःख जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आया है, वह उद्देश्य पूरा हो जाएगा। दुःख किस उद्देश्य से आया है? सुख की दासता से मुक्त करने के लिए आया है अथवा सुख-लालसा का नाश करने के लिए आया है।

मेरे कहने का तात्पर्य यह था कि दुःख में त्याग के बल की आवश्यकता है। इस दृष्टि से हम सब को दुःख में त्याग के बल की प्रार्थना करनी चाहिए। दुःख-काल में त्याग ही हमारा वास्तविक साधन है। त्याग के बिना दुःख का सदुपयोग हो ही नहीं सकता है।

यह नियम है कि जिसका सदुपयोग हो जाता है वह वस्तु अपने आप नाश हो जाती है। दुःख का सदुपयोग करने पर दुःख अपने आप नाश हो जाएगा। इतना अवश्य है, कि आपको भूख लगी है लेकिन यदि आपमें भोजन की कामना को त्यागने का बल है तो भूख आपको क्षुभित नहीं कर सकती। जब आप क्षुभित नहीं होते तब क्रोध नहीं आता। जब क्रोध नहीं आता तब विस्मृति नहीं होती। विस्मृति किस की? सत्संग की विस्मृति, अपने स्वरूप की विस्मृति, अपने प्रेमास्पद की विस्मृति नहीं होती। इस दृष्टि से यह सिद्ध हुआ कि हम सबको क्रोधित नहीं होना है और क्रोध-रहित होने के लिए हमें क्षुभित नहीं होना है, क्षुभित न होने के लिए दुःख के भय से मुक्त होना है। दुःख के भय से मुक्त होने के लिए दुःख में त्याग के बल की आवश्यकता होती है।

इस दृष्टि से यह मानना ही पड़ेगा कि दुखी का साधन त्याग है। दुखी का कर्त्तव्य त्याग है। दुखी को त्याग को अपनाना ही है। इस दृष्टि से जब हम सब दुःख में त्याग को अपना लेंगे तो त्याग को अपनाते ही दुःख का भय सदा के लिए चला जाएगा।

अब रही सुख की दासता की बात। सुख का त्याग नहीं हो सकता। सुख ऐसी प्रिय वस्तु है कि उसके त्याग की बात कहना अपने आपको धोखा देना है। परन्तु भाई, अगर सुख-काल में सेवा का बल आ जाए तो सेवक के लिए सुख का त्याग करना बहुत ही स्वाभाविक हो जाता है। क्यों? क्योंकि सेवक का हृदय पराये दुःख से भर जाता है। पराये दुःख से भरते ही वह अपना प्राप्त सुख बाँटने के लिए तत्पर हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सुख-काल में सेवा के बल की आवश्यकता है।

सेवा का अर्थ यह नहीं है कि आप किसी का दु:ख मिटा सकते हैं। सेवा का अर्थ है, कि आप अपना सुख बाँट सकते हैं। सुख बाँटने का अर्थ क्या है? भाई, सेवक के हृदय में उदारता और करुणा निवास करने लगती है। पराये दु:ख से जब हम दुखी होते हैं, हमारा हृदय करुणित हो जाता है। करुणित होने के बाद जो सुख-भोग की रुचि है वह नाश हो जाती है।

प्रवचन 4

मेरे निजस्वरूप उपस्थित महानुभाव तथा भाई और बहन !

सुख-भोग की रुचि का नाश होते ही सुख के सदुपयोग करने की सामर्थ्य आ जाती है। सुख का सदुपयोग करते ही सुख की दासता मिट जाती है और सुख की दासता मिटते ही दूसरों का जो सुख है, वह हमारा अपना सुख बन जाता है और दूसरों का जो दु:ख है, वह हमारा अपना दु:ख बन जाता है। अर्थात् सेवक के हृदय में करुणा और प्रसन्नता निवास करती है। आप देखिए और गम्भीरता से विचार कीजिए इस बात पर, कि जब आपका हृदय किसी के दु:ख से भर जाता है तब आपके हृदय में करुणा का रस बहने लगता है और जब आप किसी सुखी को देखकर प्रसन्न हो जाते हैं तब आपके जीवन में एक प्रसन्नता छा जाती है। सच्ची प्रसन्नता सुखियों को देखकर ही मिल सकती है, जो सुख भोगने से नहीं मिलती। सुख भोगने से तो भोगने की शक्ति का ह्रास और भाई, भोग्य वस्तु का विनाश होता है। भोग्य वस्तु का विनाश और भोगने की शक्ति का ह्रास यह सुख-भोग की बात है। जब हम सुखियों को देख कर प्रसन्न होते हैं तो न तो भोगने की

शक्ति का ही ह्रास होता है और न भोग्य वस्तु का ही विनाश होता है अपितु बिना ही भोगे भोग से भी अधिक प्रसन्नता प्राप्त होती है। इस दृष्टि से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि भाई, सुखी का कर्त्तव्य है सेवा। सेवा क्या? दुखियों के दुःख में दुखी होना और सुखियों के सुख में प्रसन्न होना। करुणा और प्रसन्नता का जीवन में जो आ जाना है, उसी का नाम सच्ची सेवा है।

देखिए, सेवा का अर्थ यह भी नहीं है कि जिसकी हम सेवा करते हैं, वह हमारा अपना नहीं है अथवा जिन साधनों से सेवा करते हैं, वे उसके नहीं हैं, जिसकी हम सेवा करते हैं। अगर किसी वस्तु को हम अपनी मान कर सेवा करते हैं तो उसका अर्थ सेवा नहीं है; उसका अर्थ है पुण्यकर्म। पुण्यकर्म और सेवा में एक बड़ा अन्तर यह है कि पुण्यकर्म जो है, उसका आरम्भ होता है कामना से और जिसका आरम्भ कामना से होता है, उसका परिणाम भोग होता है। उसका परिणाम करुणा नहीं होती, उसका परिणाम प्रसन्नता नहीं होती। और भोग का परिणाम सदैव रोग होता है। ऐसा कोई भोग है ही नहीं, जिसका परिणाम रोग न हो। ऐसा कोई भोग है ही नहीं जिसका परिणाम जड़ता न हो। ऐसा कोई भोग है ही नहीं, जो हमें पराधीन न बना दे। भोग प्राणी को पराधीनता में, जड़ता में आबद्ध करता है किन्तु सेवा पराधीन नहीं बनाती, जड़ता में आबद्ध नहीं करती, अपितु एक चेतना प्रदान करती है। सेवा जो है, वह हमें स्वाधीन बनाती है, पराधीन नहीं बनाती। सेवा जो है, वह हमें जड़ता से चेतना की ओर ले जाती है, अशान्ति से शान्ति की ओर ले जाती है, पराधीनता से स्वाधीनता की ओर ले जाती है और असत्य से सत्य की ओर ले जाती है।

इस दृष्टि से सेवा बड़े ही महत्त्व की वस्तु है। किन्तु सेवा उसी अंश में कर सकते हैं, जिस अंश में हम सुखी हैं अर्थात् सुखी का साधन सेवा है। इसका अर्थ कोई यह न समझे कि जो सुखी नहीं है, वह साधक नहीं हो सकता। साधक तो वह भी हो सकता है, लेकिन दुखी होने पर उसका साधन है त्याग और सुखी होने पर उसका साधन है सेवा।

इससे यह सिद्ध हुआ कि सेवा और त्याग के द्वारा हम सुख की दासता और दुःख के भय से मुक्त हो सकते हैं। अब आप विचार करें, बहुत गम्भीरता से विचार करें कि सुख की दासता और दुःख के भय का नाश होना ही क्या सद्गति नहीं है? क्या स्वाधीनता नहीं है? क्या मुक्ति नहीं है, क्या अध्यात्म-जीवन नहीं है। अध्यात्म जीवन और क्या है? आध्यात्मिक जीवन तो वही है न, जिसमें सुख की दासता न हो और दुःख का भय न हो।

परन्तु प्रार्थना यहीं समाप्त नहीं हो जाती। इससे आगे भी वह साथ देती है, आप सोचिए, जब सुख की दासता हमारे आपके जीवन में नहीं होगी, दुःख का भय हमारे अपने जीवन में नहीं होगा, तब क्या होगा? कि जो सुख की दासता और दुःख के भय से मुक्त है, उसमें अहं भाव नहीं रह सकता और जहाँ अहं भाव नहीं रह सकता वहाँ भेद नहीं रह सकता, और जहाँ भेद नहीं रह सकता, वहाँ योग और बोध अपने आप ही आ जाएगा। क्यों? क्योंकि योग दूरी को नहीं रहने देता है, न भिन्नता को रहने देता है। तो भाई, जिससे हम प्रार्थना कर रहे थे, जो हमारा अपना है, उससे योग भी हो जाएगा और उसका हमें बोध भी हो जाएगा। क्यों? क्योंकि सुख की दासता और दुःख के भय का नाश होते ही सीमित अहं-भाव का नाश हो जाएगा। यही अध्यात्म जीवन है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रार्थना का जो दूसरा भाग है उसमें सुख की दासता और दुःख के भय से मुक्त होने वाली बात है। वह अध्यात्म जीवन की पूर्णता है। और सेवा और त्याग के बल की जो बात है, वह भौतिक जीवन की पूर्णता है।

भौतिक जीवन क्या है? समस्त विश्व एक है और दूसरों का दुःख हमारा अपना ही दुःख है और दूसरों का सुख हमारा अपना ही सुख है। इससे बढ़कर तो कोई और भौतिकता है नहीं। तो भाई, भौतिकवाद कोई बुरी वस्तु नहीं है। भौतिकवादी का कर्त्तव्य क्या है? भौतिकवादी का कर्त्तव्य है—सेवा और त्याग। भौतिकवाद की पराकाष्ठा क्या है? सेवा और त्याग।

सेवा और त्याग का फल क्या है? सुख की दासता और दुःख के भय का नाश। जब सुख की दासता और दुःख के भय का नाश हुआ, तब क्या होगा? स्वाधीनता, चिन्मयता, चिर शान्ति, अमरत्व। यह क्या है? अध्यात्म जीवन। तो फिर भौतिकवाद की जो साधना है, उससे क्या हुआ? अध्यात्म जीवन में प्रवेश हुआ।

इस दृष्टि से भौतिकवाद और अध्यात्मवाद अलग-अलग नहीं हैं। एक ही जीवन के दो पहलू हैं। भौतिकवाद ने कर्त्तव्यपरायणता का पाठ पढ़ाया, तो अध्यात्मवाद ने अमर बनाया क्योंकि हमको-आपको अमरत्व की भी आवश्यकता है और भाई कर्त्तव्य की भी आवश्यकता है। इसलिए भौतिकवाद भी जीवन का एक अंग है और अध्यात्मवाद भी जीवन का एक अंग है।

पर यहीं उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो जाती। इसके बाद प्रार्थना में यह बताया कि हम सेवा और त्याग का बल किस लिए माँगते हैं? इसलिए माँगते हैं जिससे यह अर्थात् सारा विश्व सुख की दासता और

दु:ख के भय से मुक्त हो जाए। अब सुख की दासता और दु:ख के भय से किस लिए मुक्त होना है? तब यह प्रार्थना की गई कि आपके पवित्र प्रेम का आस्वादन करने के लिए।

अब आप देखेंगे कि जिससे हम प्रार्थना कर रहे हैं, जो हमारे अपने हैं, जिससे हमारा नित्य सम्बन्ध है, उससे ही पवित्र प्रेम की प्रार्थना हम करते हैं। अब आप सोचिए, जिससे हम प्रार्थना करने जाएँ और उससे कहें कि हम आपके पवित्र प्रेम को चाहते हैं, तो क्या अपना प्रेम किसी को अच्छा नहीं लगेगा। क्या अपना प्रेम देने में किसी को कठिनाई होगी। तो आपको मानना ही पड़ेगा कि प्रेम एक ऐसा अलौकिक तत्त्व है, जिसका आदान-प्रदान रसरूप है। प्रेम देने में भी रस है और प्रेम पाने में भी रस है।

अब आप कहेंगे कि जब प्रेम का आदान-प्रदान रसरूप है तो फिर भाई, प्रेम तो कोई अपवित्रता नहीं होती। तो आपने पवित्र प्रेम का विशेषण क्यों लगाया। इस सम्बन्ध में विचार करने से आपको एक बात पर ध्यान देना होगा। प्रेम अपवित्र तो नहीं है, परन्तु प्रेम का पवित्र विशेषण लगाया क्योंकि प्रेम के दो भाव होते हैं। प्रेम का एक भाव यह है, कि जिसमें कोई प्रेम-पात्र की समीपता स्वीकार करके अपने रस को सुरक्षित रखता है, किन्तु प्रेम का एक दूसरा भाव यह भी है कि प्रेमी प्रेम पात्र के रस की बात सोचता है, अपने सुख की बात नहीं सोचता। तो जहाँ प्रेमी प्रेमास्पद के रस की बात सोचता है, वहाँ प्रेम के साथ 'पवित्र' विशेषण लगाया जाता है।

यद्यपि प्रेम अपवित्र नहीं है, स्वरूप से पवित्र ही है, किन्तु इसका अर्थ यह है कि प्रेम का वह भाव जिसमें प्रेमी प्रेम-पात्र को ही रस देने की सोचता है, वह पवित्र प्रेम है। आप कहेंगे कि यह रहस्य हमारी समझ में नहीं आया। तो भाई इस रहस्य को समझाने के लिए कुछ

प्रेमियों के चरित्र पर दृष्टि डालनी होगी। आप भले ही उसे कहानी मानें, इतिहास मानें, चरित्र मानें, यह आपकी रुचि। अपना तात्पर्य तो केवल पवित्र प्रेम को समझाने के सम्बन्ध में है। तात्पर्य तो यह है, कि जो घटना आपके सामने निवेदन की जाए, आप उस घटना पर विचार न करें आप उसे मान लें, यह तात्पर्य नहीं है। तात्पर्य केवल इतना है, कि घटना के द्वारा आप पवित्र प्रेम के वास्तविक रहस्य को जान लें।

एक बार की बात है कि जब हमारे श्री नन्द जी श्याम सुन्दर को मथुरा छोड़ कर वापस लौटे और माता यशोदा ने यह देखा कि नंद जी तो आ गए पर कन्हैया नहीं हैं। तो यशोदा जी को कन्हैया के बिना नन्द जी को देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। आश्चर्य यह हुआ कि लाला नहीं आए और नन्द जी प्राण-सहित आ गए। इस आश्चर्य से चकित होकर माता यशोदा ने कहा कि हे नन्द जी, लाला जब रामावतार में वन को गए थे, तो महाराजा दशरथ ने लाला के वियोग में अपने प्राणों को नहीं रखा था। और आप लाला के बिना आ गए और प्राण-सहित आ गए। नन्द जी ने कहा—हे यशोदे, तुम ठीक कहती हो, कि रामावतार में राजा दशरथ ने लाला के वियोग में प्राणों को नहीं रखा, किन्तु यशोदे, तुम्हें मालूम है कि जब राम वन से लौटे थे, तो उन्होंने महाराजा दशरथ के न होने का दुःख अनुभव किया था। ये अभागे प्राण केवल इसलिए हैं कि लाला कभी ब्रज में आए और मेरे न होने का दुःख अनुभव करे, तो यह मुझसे सहन नहीं होगा। यद्यपि लाला के वियोग की असह्य वेदना है, पर मैं यह सह सकता हूँ, किन्तु लाला को मेरे बिना दुःख हो, यह मैं नहीं सह सकता। यह क्या है? यह है पवित्र प्रेम।

पवित्र प्रेम में प्रेमास्पद को रस देने की ही बात रहती है, अपने सुख लेने की बात नहीं होती। आप देखिए और विचार करके देखिए, कि जहाँ अपना रस है—चाहे प्रेमास्पद की सेवा का ही रस हो, चाहे

प्रेमास्पद के दर्शन का ही रस हो—अपने रस में और प्रेमास्पद के रस में कितना अन्तर होता है। अपना जो रस होता है वह अपने अहं को पुष्ट करता है और अहं जब होता है, तो वह भेद को जन्म देता है। जातीय एकता होने पर भी, नित्य सम्बन्ध होने पर भी, आत्मीयता होने पर भी अगर किसी प्रकार का अहं रहता है—चाहे चिन्मय अहं क्यों न हो, नित्य अहं क्यों न हो—किसी प्रकार का भेद ही न रहता है?

तो भाई इस दृष्टि से सोचने पर यह पता चलता है कि पवित्र प्रेम और प्रेम में बहुत बड़ा अन्तर नहीं है, किन्तु पवित्र प्रेम जो है, प्रेमी के अहं को गला कर 'प्रेम' बना देता है। अर्थात् प्रेमी का अस्तित्व नहीं रहता, अपितु प्रेम का अस्तित्व रहता है। तो प्रेमी के अस्तित्व से रहित प्रेम का जो अस्तित्व है, अरे भाई, वही पवित्र प्रेम है।

इस सम्बन्ध में अनेक प्रेमियों के चरित्र हैं। आप सोचिए, एक बार नारद बाबा को मजाक सूझा। और उन्होंने श्री रुक्मिणी जी से कहा कि, हे रुक्मिणी जी, तुम श्यामसुन्दर की इतनी सेवा करती हो, इतना प्रेम करती हो लेकिन ये तो जब देखो तब 'राधे-राधे' रटा करते हैं। ये ब्रज-वासियों को कभी नहीं भूलते हैं। रुक्मिणी ने कहा कि, बाबा, बात तो ठीक है कि श्यामसुन्दर कभी नहीं भूलते हैं ब्रज को। मैंने अनेक बार देखा है कि इनके मन में राधे, राधे की ध्वनि निकलती ही रहती है।

तो एक बिल्कुल प्राकृतिक बात है कि जब किसी पत्नी के मन में यह बात आ जाए कि मेरे पति किसी और से प्रेम करते हैं, तो उसके जीवन में उतना रस नहीं रहता। यद्यपि प्रेम के साम्राज्य में नीरसता की गन्ध नहीं है किन्तु हमको जब बात को सोचना पड़ता है, समझना पड़ता है तो अपनी भौतिक दृष्टि से समझना पड़ता है।

जब देखा श्यामसुन्दर ने कि नारद बाबा ने तो रुक्मिणी के मन में भेद पैदा कर दिया। प्रेम में सब कुछ सहन होता है, किन्तु भेद नहीं सहन होता, विस्मृति नहीं सहन होती। प्रेम के साम्राज्य में भेद और विस्मृति का कोई स्थान नहीं है। सब कुछ प्रेमी सह सकता है, पर भेद और विस्मृति नहीं सह सकता। तो भगवान ने सोचा कि भाई, नारद ने तो मजाक किया ही है, किन्तु रुक्मिणी जी का भी समाधान करना है।

तो भगवान एक दिन कहने लगे कि क्या बताएँ रुक्मिणी जी, हमारे सिर में बड़े जोर की पीड़ा हो रही है। तो आप जानते हैं कि प्रिय की पीड़ा सुनकर सभी का हृदय अधीर हो जाता है। तो रुक्मिणी जी अधीर हो गईं और कहने लगीं कि हे प्यारे, आपके सिर में पीड़ा हो रही है, तो आप कोई उपचार बताइये, कि क्या करें। क्योंकि प्रिय की जो पीड़ा है, अपनी पीड़ा से अधिक वेदना देने वाली होती है। श्यामसुन्दर कहने लगे—रुक्मिणी जी, उपचार तो है, पर यहाँ औषधि कहाँ? रुक्मिणी जी ने कहा, महाराज, आपकी द्वारकापुरी में अष्ट सिद्धि नव निधि निवास करती है। यहाँ औषधि नहीं मिलेगी। श्रीकृष्ण ने कहा—रुक्मिणी जी, यहाँ औषधि कहाँ? महाराज, आप बताएँ तो सही, ऐसी क्या औषधि है, जो यहाँ नहीं मिलेगी। श्यामसुन्दर ने कहा, रुक्मिणी जी, औषधि तो केवल इतनी-सी है कि कोई हमारा प्रेमी हो और अपने चरण की रज यदि हमारे मस्तक पर लगा देता तो हमारी पीड़ा बन्द हो जाती।

रुक्मिणी जी सोचने लगीं कि प्रेमी तो हम भी हैं, लेकिन हम इनकी पत्नी हैं, ये हमारे पति हैं। भला हम अपने पतिदेव के मस्तक पर अपने चरण की रज लगाएँगी, तो हमें नरक में जाना पड़ेगा। तो रुक्मिणी जी का साहस नहीं हुआ। नारद बाबा सोचने लगे कि प्रेमी तो

हम भी हैं, लेकिन हमारा दास्य भाव है। यदि दास अपने स्वामी के मस्तक पर अपनी चरण-रज लगाएगा, तो नरक भोगना पड़ेगा। तो नारद बाबा का भी साहस नहीं हुआ। परन्तु प्रेमी तो थे ही। प्रिय की वेदना का दु:ख तो था ही।

यह नियम है, कि प्रेमी के जीवन में जब कोई समस्या आती है, तो प्रेमियों की ओर दौड़ता है। तो नारद बाबा ने सोचा, कि चलो भाई, ब्रज में चलें। तो ब्रज में नारद बाबा आए। नारद बाबा ब्रज में गए तो वहाँ देखते हैं कि वहाँ तो सब प्रेम-मूर्च्छा में बेहोश हैं। तो उन्होंने प्रिय का नाम लेना शुरू कर दिया—श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ, नारायण वासुदेव। तो प्रिय के नाम की भनक गोपियों के कानों में पड़ी, तो उनमें चेतना आ गई। तो जब चेतना आई, तो उन्होंने देखा कि सामने नारद बाबा खड़े हैं।

यह भी नियम ही है कि प्रेमी जब किसी प्रेमी को देखता है, तो बड़ी प्रसन्नता होती है। तो प्रसन्न होकर कहने लगीं—बाबा दण्डौत, बाबा दण्डौत। कहाँ से आ रहे हैं आप? नारद बाबा कहने लगे कि आए कहाँ से हैं, आए तो हम द्वारकापुरी से हैं। तो जब प्रिय के धाम की बात सुनी, तो और चेतना हुई। तो गोपियाँ पूछने लगीं कि प्यारे अच्छे तो हैं। अच्छे तो हैं, पर जब गोपियों ने यह सन्देहास्पद सुनी, तो गोपियाँ कहने लगीं, बाबा, पर-पर क्या कहते हो? बाबा, बताओ हमारे प्यारे अच्छे तो हैं? नारद बाबा बोले कि अच्छे तो हैं पर उनके सिर में पीड़ा हो रही है। तो जब यह बात सुनी कि प्रिय के सिर में पीड़ा हो रही है, तो गोपियाँ व्याकुल हो गईं। कहने लगीं कि, क्या द्वारकापुरी में कोई उपचार करने वाला नहीं है? तो नारद बाबा बोले कि उपचार करने वाला तो है, पर औषधि नाय मिलै। तो ऐसी कौन-सी औषधि है जो

नाय मिलै। आप बताओ तो सही। क्या बताएँ औषधि तो मिलै नाय। वे पूछने लगीं कि बाबा, बताओ तो सही, ऐसी कौन-सी औषधि है? वे सोच नहीं सकती थीं। तब नारद बाबा बोले कि औषधि तो यह है कि कोई उनका प्रेमी अपने चरण की रज दे दे, तो उनके सिर की पीड़ा दूर होगी। तो वे बोलीं—बाबा, ले जाओ, ले जाओ। जितनी रज चाहिए शीघ्र ले जाओ। नारद बाबा कहने लगे कि गोपियों, क्या तुम यह नहीं जानती हो कि श्यामसुन्दर सच्चिदानन्दघन हैं। तुम उनके मस्तक पर अपनी चरण-रज लगाओगी, तो तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा। तो वे बोलीं, बाबा, एक जन्म में नहीं हम अनन्त जन्मों तक नरक भोग सकती हैं, पर प्यारे के सिर की पीड़ा नहीं सह सकतीं।

तो कहने का तात्पर्य क्या निकला? यह है पवित्र प्रेम। पवित्र प्रेम में प्रेमास्पद को ही रस देने की उत्कट लालसा रहती है। प्रेमास्पद का रस यदि अलग होने में है, तो वियोग की वेदना प्रेमी सह सकता है। प्रेमास्पद का रस मिलने में है तो मिल सकता है। लेकिन जिसमें प्रेमास्पद को रस मिलता हो, वहीं पवित्र प्रेम है।

तो इस दृष्टि से आप विचार करके देखें तो पवित्र प्रेम का अर्थ क्या हुआ? कि प्रेमास्पद को रस देना। अब आप विचार करें, बहुत गंभीरता से विचार करें कि भाई, जो सब प्रकार से समर्थ हो, पूर्ण हो उसको रस किस लिए दिया जाए। क्योंकि जब किसी में किसी प्रकार की कमी हो तो उसे पूरा करने के लिए रस दिया जाता है।

तो भाई, कमी को पूरा करने वाला जो रस होता है वह प्रेम-रस नहीं होता, वह भोग का रस होता है। तो भोग के रस में और प्रेम के रस में एक बड़ा अन्तर होता है। भोग के रस में कुछ लेने की लालसा होती है, किन्तु प्रेम के रस में कुछ लेने की लालसा नहीं होती, तो जब

कुछ लेने की लालसा नहीं होती, तो फिर प्रेम का रस कैसे दिया जा सकता है?

तो आप विचार करें, बहुत गंभीरता से विचार करें कि जब आपको अपने प्रिय की स्मृति आती है अथवा आप जब यह सुनते हैं कि हमारा प्रेमास्पद हमारा प्रेमी हमारा स्मरण करता है, तो अपनी स्मृति की बात सुन करके आपके—हमारे हृदय में एक रस की वृद्धि होती है। यह बात प्रत्येक भाई को माननी पड़ेगी, प्रत्येक बहन को माननी पड़ेगी कि जब वह यह सुनता है कि कोई हमारा प्यारा है और जब उसकी याद आती है तो उससे बड़ा रस आता है। तो भाई, जो समर्थ प्रेमास्पद है, जब उसकी स्मृति हमारे जीवन में रहेगी तब बताइये, उसे रस मिलेगा या नहीं? कि जो समर्थ है, उसको रस कब मिलता है? जब उसकी मधुर स्मृति अखण्ड रूप से बनी रहे। और उसे रस कब मिलता है? जब उसके मन की बात पूरी हो। अब उसके मन में अच्छी बात है या बुरी बात है, इस बात का विचार प्रेमी में कभी नहीं होता है। प्रेमी के जीवन में तो केवल यही बात रहती है कि भाई, प्रेमास्पद के मन में जो हो, सो हो, लेकिन एक बात आप ध्यान रखिए कि प्रेमास्पद हो कौन सकता है? प्रेम का रस कौन चख सकता है? प्रेम का रस भोगी नहीं चख सकता। भोगी प्रेमास्पद नहीं हो सकता। क्यों? जो कुछ भी चाहता है, उसको प्रेम नहीं चाहिए। प्रेम उसी को चाहिए जो भोग के रस की लालसा से रहित हो। और जो भोग की लालसा से रहित है, वह व्यक्ति नहीं हो सकता। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है, कि जो अनन्त है, जो अपार है, जो अखण्ड है, जो सभी का सब कुछ है, सच पूछिए तो वही प्रेमास्पद है।

यह तो दूसरी बात है कि उसी के नाते सभी की सेवा की जाए, सभी का आदर किया जाए, सभी को प्रेम किया जाए। लेकिन प्रेमास्पद

कौन है? कि भाई, प्रेमास्पद तो वही न होगा कि प्रेम जिसकी खुराक हो, प्रेम जिसकी माँग हो, कि जिसकी माँग में भोग की लालसा न हो। भोग की माँग, जिसमें है, उसमें प्रेम, की माँग नहीं हो सकती। योग की माँग जिसमें है, उसमें प्रेम की माँग नहीं हो सकती। ज्ञान की माँग जिसमें है, उसमें प्रेम की माँग नहीं हो सकती।

क्योंकि भाई, योग की माँग चिरशान्ति प्रदान करती है, ज्ञान की माँग अमर बनाती है। तो जिसे अमर होना है, जिसे चिर शान्ति में निवास करना है तो बताइये वह प्रेमी कैसे हो सकता है।

क्या इसका अर्थ यह है कि प्रेमी भोगी होता है? नहीं भाई भोगी नहीं होता, होता तो परम योगी है, पर वह योग के रस में आसक्त नहीं होता। क्या प्रेमी अज्ञानी होता है? अज्ञानी नहीं होता, वह महान् तत्त्वज्ञ होता है परन्तु वह ज्ञान के रस में आबद्ध नहीं होता।

तो आप कहेंगे कि योग का रस, ज्ञान का रस और प्रेम का रस—इनमें अन्तर क्या है? भाई, योग का जो रस होता है वह शान्त रस है। ज्ञान का जो रस है वह अखण्ड रस है और प्रेम का जो रस है, वह शान्त भी है, अखण्ड भी है और अनन्त भी है। तो भाई, प्रेम का रस अनन्त रस है। प्रेम के रस में, योग के रस में, ज्ञान के रस में स्वरूप से भेद नहीं है, जाति का भेद नहीं है, लेकिन सीमा का भेद है।

प्रेम का जो रस है, वह असीम और अनन्त है, ज्ञान का रस असीम और अखण्ड है और योग का जो रस है, वह असीम और शान्त है। शान्त रस में दुःख की निवृत्ति है, राग की निवृत्ति है। शान्त रस में राग और दुःख की निवृत्ति है लेकिन अगर कोई शान्ति के रस में संतुष्ट हो जाए तो शान्ति के रस में संतुष्ट प्राणी अमरत्व की बात नहीं जान पाएगा। जो अमरत्व के रस में संतुष्ट हो जाएगा, तो वह प्रेम में जो अगाध, अनन्त, नित नव रस है, उससे वंचित हो जाएगा।

अन्तर क्या है? आप सोचिए, शान्त रस में चित्त का निरोध है, चित्त की शुद्धि है और ज्ञान के रस में चित्त का बाध है, चित्त की असंगता है और प्रेम के रस में चित्त अपने पास नहीं रहता। योगी का मन शान्त और शुद्ध हो जाता है, ज्ञानी अपने मन से असंग हो जाता है अथवा यों कहो कि ज्ञान से मन का नाश हो जाता है किन्तु प्रेमी का मन प्रेमास्पद के पास रहता है। प्रेमी वही है, जिसका मन प्रेमास्पद के पास हो।

तो हमारा प्रेमास्पद कैसा है? सब प्रकार से पूर्ण है, अनन्त है, अपार है, अखण्ड है। तो जब हमारा मन उस अनन्त, अपार के पास चला जाएगा, तो प्रेमी का मन कैसा होगा? आप्तकाम होगा। इससे तात्पर्य क्या निकला? तात्पर्य यह निकला कि प्रेमी तो हो जाता है अचाह और प्रेमास्पद में उत्पन्न होती है चाह। यानि जो पूर्ण है, उसमें तो चाह उत्पन्न होती है, जो अपूर्ण है, वह चाह-रहित हो जाता है।

क्या इसका यह अर्थ है कि प्रेमास्पद में किसी प्रकार की कमी हो जाती है। कमी नहीं होती। यह प्रेम का स्वभाव ही है कि प्रेम प्रेमास्पद को प्रेमी के अधीन कर देता है। क्योंकि प्रेमी अपने पास मन नहीं रखता, प्रेमी में अपनी करके कोई वस्तु नहीं होती। जहाँ अपनी कोई वस्तु नहीं है, वहाँ प्रेमास्पद कैसे विमुख हो सकता है? कैसे उससे अलग रह सकता है? कैसे उसके बिना रह सकता है। प्रेमास्पद प्रेमी के मन को लेकर अपने प्रेमियों का चिन्तन करता है, प्रेमियों के लिए व्याकुल होता है।

तभी तो श्यामसुन्दर उद्धव जी से कहते हैं कि भैया उद्धव, जब से ब्रज छोड़ा है, किसी ने माखन-रोटी नहीं दी, किसी ने दूध के झाग नहीं खिलाए, किसी ने कन्हैया, कन्हैया कहकर नहीं पुकारा, किसी ने

गुंजा की माला नहीं पहनाई। यह किस का मन है? यह मैया यशोदा का मन है। तो मैया यशोदा के मन को ले करके कन्हैया ब्रजवासियों के विरह में व्याकुल हैं। और कन्हैया को लेकर ब्रजवासी आप्तकाम हैं, आत्माराम हैं, नित्यमुक्त हैं। नित्यमुक्त होने पर भी, आप्तकाम होने पर भी कन्हैया की विस्मृति नहीं है।

तो भाई, यह तो प्रेम का साम्राज्य है। प्रेम के साम्राज्य में नित नव रस है, अगाध अनन्त रस है। यह रहस्य कब समझ में आता है? जब प्रेम के साम्राज्य में प्रवेश हो। तो प्रेम के साम्राज्य में प्रवेश कब होता है? जब साधक प्रेमास्पद के अस्तित्व को निस्संदेहतापूर्वक स्वीकार कर ले। यही प्रेम के साम्राज्य में प्रवेश होने का उपाय है। हमारे प्रेमास्पद हैं और वे हमारे अपने ही हैं।

अब आप सोचिए, प्रार्थना का जो सबसे पहला वाक्य है, उसमें यही है—मेरे नाथ। मेरे नाथ का अर्थ क्या है? कोई और मेरा नहीं है, मैं अनाथ नहीं हूँ। न तो मैं अनाथ हूँ और न कोई और मेरा है। भाई, यह तन भी मेरा नहीं है, यह मन भी मेरा नहीं है, यह प्राण भी मेरे नहीं हैं। यह सब कुछ तेरा है और तू केवल मेरा है। यही प्रेम की प्राप्ति का सुगम उपाय है।

जब कोई अपना है ही नहीं, तो आप विचार करें किसी व्यक्ति से सम्बन्ध रहेगा। लेकिन क्या वस्तु नहीं रहेगी। तो यह मानना पड़ेगा कि वस्तु रहेगी, उससे सम्बन्ध नहीं रहेगा। वस्तु रहे और उससे सम्बन्ध न रहे, तो क्या हो जाएगा? कि वस्तु के सम्बन्ध से जो लोभ, मोह, काम आदि जो विकार उत्पन्न हो गया था, वह विकार नाश हो जाएगा।

कहने का तात्पर्य मेरा यह था कि भाई, अब हमारा सम्बन्ध अपने प्रेमास्पद से हो गया, किसी और से नहीं रहा।

प्रवचन 5

मेरे निजस्वरूप उपस्थित महानुभाव तथा भाई और बहन!

जो ज्ञान मौजूद है, उसी के द्वारा हम अपने सम्बन्ध में विचार करें तो हमें अपनी भूल का ज्ञान होगा। जिस ज्ञान से भूल का ज्ञान होता है, वही वास्तव में ज्ञान है। तो भूल के ज्ञान से भूल करने की व्यथा होगी, वेदना होगी, पीड़ा होगी। और जब मानव अपनी भूल से आप पीड़ित होता है, तब भूल को न दोहराने का बल प्रभु कृपा से कहो, गुरु कृपा से कहो, सन्त-कृपा से कहो अपने आप मिल जाता है।

भूल कब तक जीवन में रहती है? जब तक भूल से पीड़ित नहीं होते, दुखी नहीं होते। इस दृष्टि से यह सिद्ध हुआ, कि हमें अपनी भूल को जानना भी है और उससे पीड़ित होना है। किस सीमा तक? उस सीमा तक कि उसके न दोहराने की बात आ जाए। क्योंकि जब हम अपनी भूल को जान लें और उसको न दोहराएँ अर्थात् जानी हुई बुराई को न करें और की हुई को न दुहरायें। तो जब की हुई बुराई को दोहराते नहीं हैं और जानी हुई बुराई को करते नहीं हैं, तब हम बुरे नहीं रहते।

ऐसा नियम है कि बुराई का जो नाश होता है वह भलाई से नहीं होता, अपितु बुराई को न करने से होता है। तो जब हमने यह तय कर लिया कि भाई, अब हम जानी हुई बुराई को नहीं करेंगे, की हुई बुराई को नहीं दोहराएँगे, तो इतने ही मात्र से सारा संसार हम से प्रसन्न हो जाता है या ऐसा कह दो, नाराज नहीं रहता। बुराई-रहित मानव की माँग संसार को है।

उसके बाद क्या होता है? कि जब हम बुराई-रहित हो जाते हैं अर्थात् बुराई को नहीं करते हैं, तब अपने आप भलाई होने लगती है। जो बुराई नहीं करता, वह बुरा नहीं रहता। जो बुरा नहीं रहता, वह भला हो जाता है। और जब वह भला हो जाता है, तो भले होने से भलाई होती है।

अब यह बात बहुत ही गंभीरता से विचार करने की है। कुछ लोग यह सोचते हैं, कि जब हम भलाई करेंगे, तब हम भले होंगे। मानव सेवा संघ ऐसा नहीं मानता। मानव सेवा संघ ऐसा कहता है कि भाई, देखो, जब तुम भले हो जाओगे, तभी भलाई कर पाओगे। कर्त्ता से कर्म निकलता है, कर्म से कर्त्ता नहीं निकलता। यदि कर्म से कर्त्ता निकलता होता, तो कर्म तो मशीन से भी होता है। तब तो ऐसी मशीन बन जाती; तब तो ऐसी फैक्ट्री बन जाती, जिसमें भले आदमी बन जाया करते। भले बनाने की तो कोई फैक्ट्री नहीं बनी आज तक संसार में। क्यों नहीं बनी? क्योंकि भाई, कर्म पीछे होता है, कर्त्ता पहले होता है। यदि हम भले हो जाएँगे, तो हमारे जीवन में भलाई होने लगेगी। इसलिए भले कब होंगे? जब बुराई-रहित हो जाएँगे।

जानी हुई बुराई न करें, की हुई बुराई न दोहराएँ। बुराई न करने से भले होते हैं, भलाई करने से भले नहीं होते हैं। अच्छा, बुराई न

करना यह अपने को भला बनाना है। जब आप भले हो जाते हैं, तो भलाई होने लगती है। उससे संसार के अधिकार पूरे हो जाते हैं। भलाई से सारा संसार प्रसन्न हो जाता है, सारा संसार हर्षित हो जाता है। तो पहली बात हुई-बुराई न करना, दूसरी बात हुई भले होकर भलाई करना। अब उस की हुई भलाई के बदले में अगर हम कुछ न चाहें, यह तीसरी बात हुई—कुछ न चाहना। तो क्या होता है? जो कुछ नहीं चाहता है उसका संसार बड़ा आदर करता है, उसे बहुत पसन्द करता है। चाहने वाले को कोई पसन्द नहीं करता, न चाहने वाले को सब पसन्द करते हैं।

तो भलाई से, कुछ न चाहने से हमको शान्ति मिलती है। भलाई से हम संसार के ऋण से मुक्त होते हैं। उसके बाद एक चौथी आती है प्यार देना। प्यार देने से तो संसार की तो कौन कहे, भगवान को भी प्रसन्नता होती है। तो चार बातें जीवन में हुईं—पहली बात बुराई-रहित होना, दूसरी बात भलाई करना, तीसरी बात बदले में कुछ न चाहना और चौथी बात प्यार देना। इन चार बातों से मनुष्य का जीवन सफल हो जाता है, सार्थक हो जाता है। और फिर उसे न कुछ करना रहता है न कुछ पाना रहता है। क्यों नहीं रहता करना भाई, कि बुराई-रहित होने से जितने तप हैं, वे सब आ जाते हैं।

तप का मतलब क्या है? जिसके जीवन में बुराई की उत्पत्ति नहीं होती, वह तपस्वी हो गया और बुराई-रहित होने से जितनी अच्छाई हैं, वे सब अपने आप आ जाती हैं। क्योंकि अच्छाई जो है न, वह दैवी है, वह मनुष्यकृत नहीं है। बुराई मनुष्य की भूल से होती है और अच्छाई स्वभाव से होती है। इसको कहना चाहिए कि ईश्वरीय विधान से, प्राकृतिक विधान से, दैवी विधान से जिस प्रकार की भाषा आपको

अच्छी लगती हो, उसी प्रकार से अर्थ कर लेना चाहिए। क्योंकि जो अच्छाई होती है, वह तो अपने आप होती है, उसे किसी से सीखनी नहीं पड़ती, सिखानी नहीं पड़ती। बुराई-रहित हुए नहीं कि अच्छाई हो गई। एक उदाहरण लीजिए—कि अगर कोई झूठ नहीं बोलता, तो सच ही बोलेगा, कटु नहीं बोलेगा, तो मधुर ही बोलेगा। तो सच बोलना, मधुर बोलना तो स्वाभाविक हुआ और झूठ बोलना, कटु बोलना यह एक भूल हुई। जैसे हमने की हुई भूल को निकाल दिया तो अच्छाई जिसे कहते हैं न, जिसकी संसार को जरूरत है, वह जीवन में अपने आप आ जाती है। तो समस्त साधनों की भूमि क्या हुई? बुराई-रहित होना। कौन-सी बुराई, जिसे आप स्वयं अपने ज्ञान से जानते हैं, कि यह बुराई है, उस बुराई से रहित हो जाएँ।

कोई कहे कि हम तो जानते ही नहीं, कि बुराई किसे कहते हैं। उसके सम्बन्ध में यह मान लेना चाहिए कि या तो उसकी मानव संज्ञा नहीं है या उसमें बुराई नहीं है। तो दो बातें माननी पड़ती हैं या तो उसकी मानव संज्ञा नहीं है, प्राणी है खाली। अगर मानव संज्ञा उसकी है, बुराई को जानता है और बुराई यदि नहीं है जीवन में, तो बहुत ऊँची बात हो गई, बहुत सुन्दर बात हो गई।

तो बुराई-रहित होना यह सबके लिए बहुत जरूरी है, बहुत जरूरी है। उसके बाद अगर आपको पसन्द आ जाए तो पर-पीड़ा से पीड़ित होना क्योंकि पर-पीड़ा से पीड़ित हुए बिना भलाई बनती नहीं। सच्चाई से भलाई नहीं बनती, स्वभाव से भलाई नहीं बनती, हृदय से भलाई नहीं बनती। जो कोई व्यक्ति पर-पीड़ा से पीड़ित हो जाता है न, जिसे दूसरे का दुःख अपना दुःख लगने लगता है न वह उसके लिए जो कर सकता है, वह आप करता ही है। किसी का बच्चा बीमार हो जाता है तो

माँ-बाप जो कर सकते हैं, करते ही हैं। भाई बीमार हो जाता है तो, जो भाई कर सकता है, वह करता ही है। ऐसे ही जिसका हृदय पर-पीड़ा से पीड़ित होता है, उसमें भलाई अपने आप आ जाती है। और आ क्या जाती है, होने ही लगती है।

तो पहली बात हुई बुराई-रहित होना, दूसरी बात हुई पर-पीड़ा से पीड़ित होना, उसका फल क्या होगा? कि पर-पीड़ा से पीड़ित होने पर भलाई होने लगती है। चौथी बात हुई, कुछ न चाहना। कुछ मत चाहो, तो पाँचवीं बात होती है—प्रभु को प्रेम दो, सभी को प्रेम दो। प्रेम देना, कुछ न चाहना, पर-पीड़ा से पीड़ित होना, बुराई-रहित होना। पर-पीड़ा से पीड़ित होना कहो, भलाई करना कहो, एक.ही बात है। जो पर-पीड़ा से पीड़ित होता है, वह भलाई करता है। और कुछ न चाहना कहो या प्रेमी होना कहो। इन चार बातों से हर भाई का जीवन, हर बहन का जीवन इतना सुन्दर हो जाता है कि वह संसार के लिए उपयोगी होता है। क्योंकि बुराई-रहित होने से, पर-पीड़ा से पीड़ित होने से भलाई होती है। ये तीनों बातें एक साथ चलती हैं। जो बुराई-रहित है, वही पर-पीड़ा से पीड़ित होगा जो पर-पीड़ा से पीड़ित होगा, उससे ही भलाई होगी। तो वह संसार के काम आएगा। वह संसार के काम आ गया और बदले में जो कुछ नहीं चाहेगा, तो वह अपने काम आ जाएगा। और प्रेमी हो जाएगा, तो प्रभु के काम आएगा।

तात्पर्य यह निकला कि अगर मनुष्य अपने ज्ञान का आदर करे तो अपने ज्ञान का आदर करना—यही तो सत्संग है। और सत्संग है क्या? क्या खाली चर्चा करना सत्संग है? सत्संग तो यह नहीं हुआ। यह सत्य है कि किसी को भी अपने साथ बुराई पसन्द नहीं है। कोई कभी यह नहीं सोचता कि हमारा साथी बुरा हो। संसार को बुराई नहीं

चाहिए, यह सत्य है। यदि यह सत्य है, तो अब हमको अपने जीवन में जानी हुई बुराई नहीं रखना है। तो हम हो गए सत्संगी। जो सत्य को स्वीकार करे, सो न सत्संगी होता है। या खाली सत्य का कथन करे, चिन्तन करे, वह सत्संगी होता है?

और भाई, सत्चर्चा, सच्चिन्तन यह केवल सत्संग के लिए सहयोगी साधन तो हो सकता है कि भाई, सत्चर्चा करेंगे फिर सत् चिन्तन करेंगे, तब सत्य का संग करेंगे। तो सत्य क्या है, इसका ज्ञान तो आपमें है। और यदि यह ज्ञान न होता, तो आपको सत्संग करने की जरूरत ही न होती कि आप सत्संग कीजिए।

सत्य का आपको ज्ञान है। आप जानते हैं कि हमें बुरा साथी नहीं चाहिए। सब जानते हैं कि किसी को बुरा साथी नहीं चाहिए, किसी को आलसी साथी नहीं चाहिए, किसी को अयोग्य साथी नहीं चाहिए, किसी को अनुदार साथी नहीं चाहिए, बेईमान साथी नहीं चाहिए। बताइये, किसको बेईमान साथी चाहिए। आपमें से चाहिए किसी को? जी, किसी को नहीं चाहिए। तो आप तो इस बात को जानते ही हैं कि किसी को बेईमान की जरूरत नहीं है। और जो उदार नहीं है, उसकी जरूरत नहीं है।

सारे संसार की माँग है कि हमारे लिए लोग ईमानदार हों, हमारे लिए उदार हों योग्य हों, परिश्रमी हों। सब चाहते हैं। तो जब हम जानते हैं इस बात को, कि भाई किसी को भी बेईमान साथी नहीं चाहिए, आलसी नहीं चाहिए, अयोग्य नहीं चाहिए, अनुदार नहीं चाहिए। सब को उदार आदमी चाहिए, सबको परिश्रमी चाहिए, सब को योग्य चाहिए, सबको ईमानदार चाहिए। तो जैसा साथी हमको चाहिए वैसा ही सारे संसार को चाहिए। तो इस बात में हम स्वाधीन नहीं हैं, कि जैसा साथी

हमें चाहिए, वैसा हमारा साथी हो जाए। और इस बात में हम पराधीन भी नहीं हैं, कि हम स्वयं उदार हो जाएँ, हम ईमानदार हो जाएँ, हम सब जहाँ तक हो सके योग्य हो जाएँ।

योग्य माने जो संसार के किसी काम आ सके। परिश्रमी माने—काम आने में जरा भी हिचक न करे, काम आने में संकोच न करे। उसे कहते हैं परिश्रमी। और उदार माने—जिसको भलाई के बदले कुछ नहीं चाहिए, वही उदार है। तो हम सब उदार हो सकते हैं, हम सब परिश्रमी हो सकते हैं, हम सब किसी न किसी काम में आ ही सकते हैं, ईमानदार हो सकते हैं। तो यह बात हम और आप जानते हैं।

तो मानव सेवा संघ हमेशा कहता है, कि भाई, देखो, तुम अपने ज्ञान रूपी गुरु का आदर करो। ज्ञान गुरु का ही तो स्वरूप है, प्रेम प्रभु का स्वरूप है। ऐसे ही योग, ज्ञान, प्रेम यही तो सन्त में होता है। और सन्त में होता क्या है? सन्त में योग होता है, सन्त में ज्ञान होता है, सन्त में प्रेम होता है। परमात्मा में भी ये ही बातें होती हैं। योग भी होता है, ज्ञान भी होता है, प्रेम भी होता है। तो इसलिए ही तो यह बताया गया कि सन्त का और परमात्मा का जातीय सम्बन्ध होता है। दोनों एक ही जाति के होते हैं। अन्तर क्या होता है? कि सन्त के द्वारा हमें इस बात में विश्वास होता है, कि परमात्मा में ज्ञान है, परमात्मा में प्रेम है, परमात्मा में सामर्थ्य है। अन्तर क्या होता है कि सन्त को जो सामर्थ्य प्राप्त होती है वह योग से ही होती है। तो योग रूपी विभूति, ज्ञानरूपी विभूति, प्रेम रूपी विभूति ये तीनों ही परमात्मा की विभूति हैं और ये तीनों ही गुरु का स्वरूप हैं। तो वह योग-रूप भी है, ज्ञान-रूप भी है, प्रेम-रूप भी है।

इस दृष्टि से अपने यहाँ की संस्कृति में, अपने यहाँ की सभ्यता में गुरु की बहुत महिमा गाई जाती है, क्योंकि ज्ञान उसमें है, योग उसमें है

और प्रेम उसमें है। या यह कहिए कि ज्ञान, योग, प्रेम को उसने प्राप्त किया है।

तो आज हमें और आपको भी ये तीनों चीजें मिल सकती हैं, कि जब हम बुराई-रहित हो जाते हैं, दूसरों के दुःख से पीड़ित होते हैं तो जीवन में उदारता आ जाती है, सेवा आ जाती है। और जब कुछ नहीं चाहते, तो त्याग आ जाता है। और परमात्मा के नाते सभी को अपना मानते हैं, तो प्रेम आ जाता है। तो जब जीवन में सेवा आ गई, त्याग आ गया, प्रेम आ गया तो मानव सेवा से जगत् के लिए, त्याग से अपने लिए और प्रेम से प्रभु के लिए उपयोगी हो जाता है।

दुनिया में आज तक जितने सन्त हुए, महात्मा हुए, बड़े आदमी हुए, पीर हुए, पैगम्बर हुए उन सबके जीवन में आप तीनों ही बातें देखेंगे। आपको सेवा दिखाई देगी, आपको त्याग दिखाई देगा, आपको प्रेम दिखाई देगा। तो ऐसे अनेक उदाहरण आपको संसार में मिलेंगे।

तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि भाई एक बार सुन लिया, दो बार सुन लिया, अनेक बार सुन लिया। रोज पाठ कर लिया, समझ लिया, सोच लिया कि भाई बिना सेवा के, बिना त्याग के, बिना प्रेम के जीवन जो है वह निरर्थक है, सार्थक नहीं है, अनुपयोगी है उपयोगी नहीं होता, कामयाब नहीं होता, कारामद नहीं होता। क्यों? जीवन में संसार को सेवा चाहिए। अपनी जो माँग है, वह बेचारा संसार तो पूरी नहीं कर सकता। संसार किसी को मुक्ति दे सकता है क्या? शान्ति दे सकता है क्या, किसी का दुःख हर सकता है क्या। संसार तो यह कर नहीं सकता। संसार तो केवल आपके सहयोग के लिए वस्तु दे सकता है, आदर दे सकता है। संसार किसी को शान्ति नहीं दे सकता, मुक्ति नहीं दे सकता, भक्ति नहीं दे सकता।

शान्ति तो जब कभी मिलेगी आपको, तो त्याग से मिलेगी। भक्ति जब मिलेगी आपको, तो प्रेम से ही मिलेगी। बिना प्रेम के तो भक्ति मिलती नहीं है। ऐसे ही संसार के राग से आप कब मुक्त होंगे? सेवा से ही होंगे। सेवा करना, कुछ न चाहना और प्रेमी होना मनुष्य के लिए जरूरी हो गया।

अब आप स्वयं सोचिए कि प्रेम जीवन में कब आता है? जब हम किसी को अपना मानते हैं। अगर हम आज भगवान को अपना मान लें, परमात्मा को अपना मान लें, तो अपना मानने से ही प्रेम की जागृति होती है। और अपना मानना हम सबको आता है।

यह नहीं है कि भूखे रहने से, कि नंगे रहने से, कि रुपया खर्च करने से, कि शारीरिक परिश्रम से या सम्पत्ति से प्रेम प्राप्त होता है, किसी भी प्रकार से प्रेम प्राप्त नहीं होता। यदि प्रेम प्राप्त होता है, तो अपना मानने से ही होता है।

यदि शान्ति प्राप्त होती है तो कुछ न चाहने से ही होती है। जिसे कुछ नहीं चाहिए उसी को शान्ति मिली है। और किसी को तो शान्ति मिली नहीं है। और जिसने अपना करके कुछ नहीं रखा है, उसी में निर्विकारता आई है। और जो किसी के काम आया है, उसी में उदारता आई है। अब ये तीनों ही बातें आपके सामने मौजूद हैं।

आप प्रभु को या प्रभु के नाते सबको अपना मान सकते हैं। यह सत्य है कि प्रभु अपने हैं, तो उनके नाते सभी अपने हैं। यदि प्रभु प्यारे लगेंगे, तो सभी प्यारे लगेंगे। अन्तर क्या होगा कि जो प्रभु के नाते अपने हैं, उनको केवल प्यार नहीं चाहिए, सेवा भी चाहिए। संसार केवल प्रेम से प्रसन्न नहीं होता उसको सेवा भी चाहिए। आप किसी से कहें कि हम आपको बहुत प्यार करते हैं। उसको लगी हो प्यास। प्यार

तो करते हो, पर हमको एक गिलास पानी पिला दो। यदि वह कहे कि पानी किसी और से ले लो। तो ऐसे प्यार का हम अचार डालेंगे?

संसार को खाली प्रेम नहीं चाहिए। संसार को सेवा भी चाहिए। लेकिन भगवान को केवल प्यार चाहिए। क्यों? भगवान पूर्ण है। जो पूर्ण होता है, उसको कोई वस्तु नहीं चाहिए। उसको कोई ऐसा काम नहीं चाहिए, जो बल के द्वारा कर सको। उसे केवल प्रेम चाहिए। और जो अपूर्ण होता है, उसे सेवा और प्रेम दोनों चाहिएँ।

और अपने को न संसार से कुछ चाहिए न भगवान से कुछ चाहिए। तो दुनिया में सबसे बड़ा आदमी वही हो सकता है, जिसमें ये तीनों बातें हों। कौन-कौन सी बात हों? संसार के लिए तो वह सेवक हो और प्रभु के लिए प्रेमी हो और स्वयं अपने लिए न संसार से कुछ चाहे न भगवान से कुछ चाहे। क्यों? क्योंकि सेवा करने में जो जीवन है, वह कुछ माँगने में थोड़े ही जीवन है। कुछ माँगने में कोई जीवन नहीं है। ऐसे ही प्रेम देने में जो जीवन है, वह माँगने में थोड़े ही जीवन है।

तो सच्चा सत्संगी जो होता है, जो सत्य को स्वीकार करता है, जो सत्य का प्रेमी होता है, वह न तो संसार से कुछ चाहता है, न भगवान से कुछ चाहता है। संसार से क्यों नहीं चाहता? संसार से इसलिए नहीं चाहता कि सारा संसार मिलकर एक व्यक्ति को शान्ति नहीं दे सकता। और शान्ति है अपनी जरूरत, तो जो बात बेचारा संसार दे ही नहीं सकता, उस संसार से क्या माँगना। अच्छा, वह परमात्मा से कुछ क्यों नहीं माँगता। परमात्मा दे तो सब कुछ सकता है, लेकिन परमात्मा के प्रेम में जो रस है, वह रस किसी वस्तु के भोग में थोड़े ही है। अगर परमात्मा के प्रेम का रस घटिया होता और भोग का रस बढ़िया होता

तब तो यह कहा जा सकता था कि भगवान यह दे दो, यह दे दो भोग-सामग्री दे दो, भोगने की शक्ति दे दो यदि भोग का रस प्रेम के रस से बढ़िया होता। भोग का रस तो प्रेम के रस से बढ़िया है नहीं।

इसलिए परमात्मा से यदि कुछ भी माँगेंगे, तो आपका सम्बन्ध परमात्मा से तो रहेगा नहीं, जो हम माँगेंगे, उससे हो जाएगा। इसलिए हमें परमात्मा से कुछ नहीं चाहिए कि परमात्मा से हमारा सम्बन्ध न टूटे। और संसार हमारी जरूरत को पूरा कर ही नहीं सकता। संसार जो कुछ कर सकता है उसकी पहुँच संसार के आगे तो होती नहीं। अन्न होगा, तो शरीर के लिए, वस्त्र होगा तो शरीर के लिए, औषधि होगी तो शरीर के लिए, रहन-सहन के आने-जाने के जितने साधन हैं, वे सब शरीर तक पहुँचते हैं। शरीर से आगे तो संसार की कोई वस्तु पहुँचती नहीं।

क्या यह बात आपको समझ में आती है कि नहीं? संसार जो कुछ दे सकता है, वह शरीर से आगे पहुँचता है क्या? नहीं पहुँचता। अच्छा अब शरीर से हमारा नित्य सम्बन्ध है क्या? संसार का और हमारा कोई जातीय सम्बन्ध है क्या? हम शरीर के बिना और शरीर हमारे बिना नहीं रह सकता क्या? सबको मानना पड़ता है कि शरीर हमारे बिना नहीं रह सकता है और हम उसके बिना रह सकते हैं। शरीर सदैव रहेगा नहीं। इसलिए शरीर से हमारी माँग पूरी हो नहीं सकती।

यह हो सकता है कि शरीर के द्वारा संसार के काम आ सकते हैं, किसी सीमा तक। और संसार भी शरीर के लिए आवश्यक वस्तु दे सकता है—किसी सीमा तक। आज तक ऐसी तो कोई खुराक बनी नहीं, कि जिससे आदमी बूढ़ा न होता या मरता नहीं या शरीर नाश न होता, शरीर की शक्ति न घटती।

ऐसी खुराक आज तक बनी है क्या? कोई खुराक ऐसी नहीं बनी। चाहे कितनी ही अच्छी से अच्छी खुराक आप खाइये, खाते हुए भी जितनी शक्ति क्षीण हो जाती है शरीर की रोजाना, उतनी रोजाना की खुराक से पूरी नहीं होती। यदि उतनी शक्ति रोजाना खुराक से पूरी होती, तो जीवन में बुढ़ापा कभी आता ही नहीं, मृत्यु तो कभी आती नहीं, शरीर कभी बदलता नहीं, शरीर कभी नाश होता ही नहीं। बल बढ़ता ही रहता बल घटता ही नहीं। लेकिन आपका सब का अनुभव है कि बचपन से जवानी तक बल बढ़ता रहता है और जवानी के बाद घटता रहता है। बढ़ता रहता है क्या? बल खर्च ही होता रहता है। यदि बल बढ़ गया, तो एक-सा बना रहे। बना तो नहीं रहता न?

तो शरीर सदैव नहीं रहेगा, ऐसा हम सब जानते भी हैं, अनुभव भी करते हैं। इसलिए भाई, शरीर के द्वारा या तो संसार की सेवा करो या सेवा नहीं कर सकते हो तो संयम करो। दो ही चीज शरीर से हो सकती हैं। शरीर के द्वारा आप संयम कर सकते हैं, शरीर के द्वारा आप सेवा कर सकते हैं, सदाचारी रह सकते हैं। लेकिन असंयम मत करो, किसी को हानि मत पहुँचाओ और दुराचारी मत बनो। सदाचारी बनो, संयमी बनो, सेवक बनो। यही शरीर का धर्म है।

इसी को यदि आपने प्रभु के नाते कर दिया तो उसका नाम हो जाएगा भजन। प्रभु के नाते किया हुआ काम भजन हो जाता है और अपने सुख के लिए किया हुआ काम बन्धन हो जाता है।

बन्धन कहाँ है? यदि जो कुछ करते हैं, उसके बदले में कुछ चाहते हैं, तो बन्धन में पड़ जाते हैं। किसी से कुछ न चाहें, तो बन्धन में नहीं रहते हैं। सेवा करने से संसार का बन्धन टूटता है। बदले में कुछ न चाहने से मुक्ति मिलती है, प्रभु को अपना मानने से भक्ति मिलती है।

इस दृष्टि से हर आदमी शान्ति पा सकता है, मुक्ति पा सकता है, भक्ति पा सकता है। चाहे उसे जैसा चाहिए, वैसा खाना न मिले, जैसा कपड़ा चाहिए, वैसा कपड़ा न मिले और मिलकर भी छिन जाए, यह हो सकता है। पर यह नहीं हो सकता कि अगर आप पसन्द करें तो आपको शान्ति न मिले, आपको मुक्ति न मिले, आपको भक्ति न मिले। शान्ति, मुक्ति, भक्ति में तो मनुष्य का जन्मजात अधिकार है। जरूरत अनुभव करो। यह जरूरत अनुभव करो कि मुझको शान्ति चाहिए। तो भाई, आप जरूरत अनुभव करोगे, तो आप ही आप वह बल आ जाएगा, जिसे शान्ति चाहिए।

शान्ति चाहिए, तो निष्काम होने से शान्ति मिलती है। निष्काम कब होते हैं? निर्मम होने से होते हैं। और निर्मम कब होते हैं कि जब हम यह जानते ही हैं, निज ज्ञान के द्वारा यह जानते ही हैं कि किसी भी वस्तु पर मेरा स्वतन्त्र अधिकार नहीं है।

जिस वाणी से मैं बोल रहा हूँ, जब तक चाहूँ नहीं बोल सकता। जो शरीर मुझे मिला है, उससे जब तक चाहूँ काम नहीं कर सकता, जैसा चाहूँ नहीं रख सकता। तो मिले हुए शरीर पर हमारा स्वतन्त्र अधिकार नहीं है। इस ज्ञान से ही ममता का नाश होगा।

आँख बन्द करने से, नाक बन्द करने से, भूखे रहने से, नंगे रहने से ममता का नाश नहीं होगा। ममता का नाश जब भी होगा तो जो आपमें ज्ञान है, उस ज्ञान का आदर करने से होगा। ज्ञान के द्वारा ही ममता का नाश होता है। जब ममता का नाश हो जाता है तो कामना का नाश हो जाता है। क्योंकि जिसका कुछ नहीं है, सचमुच उसको कुछ नहीं चाहिए। ममता से ही कामना का जन्म होता है। जब यह मान लेते हैं कि हमारा कुछ है तब कहते हैं कि उसके लिए कुछ चाहिए। तो जब

मेरा कुछ नहीं है, यह बात आ जाती है तो यह बात आ जाती है कि मुझे कुछ नहीं चाहिए।

जिसका कुछ नहीं है, उसे कभी भय होता है क्या? उसको कभी अशान्ति होती है क्या? वह पराधीन रहता है क्या? आप विचार तो करो, जिसके पास कुछ नहीं है, जिसे कुछ नहीं चाहिए। दोनों बातों को सामने रख लो। जिसके पास कुछ नहीं है, जिसे कुछ नहीं चाहिए, न तो उसमें बन्धन रहता है, न उसमें विकार पैदा होता है, न उसमें अशान्ति होती है। तो निर्विकारता और शान्ति इन दो बातों से ही आई है न —मेरा कुछ नहीं है, इससे, और मुझे कुछ नहीं चाहिए इससे।

तो ज्ञान से जो बात सिद्ध है, यह बात किसी के कहने से नहीं मान ली गई। आप अपने ज्ञान से देख लीजिए कि सचमुच मेरा कुछ है नहीं। मेरा कुछ होता तो जब तक मैं चाहता तब तक उसको रखता न। मेरा कुछ नहीं है और मेरा कुछ है ही नहीं तो मुझे चाहिए क्या? मुझे कुछ नहीं चाहिए। इन दो बातों से कि "मेरा कुछ नहीं है", "मुझे कुछ नहीं चाहिए" निर्विकारता और शान्ति मिलती है।

अब आप देखिए, शान्ति रुपये से नहीं मिली, शान्ति योग्यता से नहीं मिली, शान्ति किसी बल से नहीं मिली। क्यों? अगर मान लीजिए, शान्ति बल से मिलती होती, योग्यता से मिलती होती तो दो व्यक्तियों के पास समान बल है क्या?

क्या विचार है आपका? बोलिए। एक से दो बलवान देखें हैं कभी? नहीं देखे। तो शान्ति तो सबको चाहिए।

भगवान का ऐसा मंगलमय विधान है, कि शान्ति के लिए, निर्विकारता के लिए हम सब समान रूप से अधिकारी हैं। कब? ज्ञान का आदर करें तब, सत्संग करें तब। यह सत्य हैं न कि मेरा कुछ नहीं

है। जब इस सत्य को मान लें कि मेरा कुछ नहीं है, तो सारे विकार नाश हो जाते हैं।

शरीर को अपना मानने से ही तो मोह की उत्पत्ति हुई है, वस्तु को अपना मानने से ही लोभ की उत्पत्ति होती है। तो ऐसे ही जब मेरा कुछ नहीं है, इसका ठीक अनुभव कर लेने से मनुष्य को निर्विकारता मिलती है। और जब मेरा कुछ है ही नहीं, तो कुछ चाहिए ही न हीं। तो कुछ न चाहने से शान्ति मिलती है। और अगर उसके आगे चलें और यह मान लें कि भगवान अपने हैं, तो भक्ति मिलती है।

तो शान्ति पाने में, मुक्ति पाने में और भक्ति पाने में, निर्विकार होने में, विकारों से रहित होने में हम सब स्वाधीन हैं। पर बड़े ही दुःख के साथ कहना पड़ता है, कि जिसकी प्राप्ति में हम स्वाधीन हैं, समर्थ हैं उसी को पसन्द नहीं करते हैं। यह बात नहीं है कि आपको मुक्ति इसलिए नहीं मिलती कि साहब आपके पास धन नहीं है, कि बल नहीं है, कि योग्यता नहीं है, सो बात नहीं है। आप पसन्द नहीं करते हैं इसलिए शान्ति नहीं मिलती, इसलिए मुक्ति नहीं मिलती, इसलिए भक्ति नहीं मिलती।

अगर आप पसन्द करें, कि हमको तो शान्ति चाहिए, हमको तो मुक्ति चाहिए, हमको तो भक्ति चाहिए। अरे भाई, जिसको शान्ति चाहिए, उसको तो अपने ज्ञान का आदर करना ही पड़ेगा, भूल-रहित होना ही पड़ेगा। यही तो हमसे भूल हुई कि जो वस्तु हमारी नहीं है, उसको हमने अपना मान लिया। और जो अपना था, उसको अपना माना नहीं। दोनों तरह से भूल हुई कि शरीर और संसार जो दिखाई देता है, वह तो अपना था नहीं, उसको तो अपना मान लिया। और भक्तों ने, सन्तों ने जिस भगवान के लिए कहा कि हमारा सबका अपना है, उसे अपना नहीं माना।

तो भगवान को अपना न मानने से तो हम भक्ति से दूर हो गए और संसार को अपना मानने से हम बन्धन में पड़ गए। अब जब बन्धन में पड़ गए, भक्ति से दूर हो गए तो जीवन में अनेक प्रकार के दोषों की उत्पत्ति हो गई, अनेक प्रकार के अभावों की उत्पत्ति हो गई। उस अभाव को, उन दोषों को मिटाने के लिए यह बात सामने आई कि भाई, अब तो सत्संग करो यानि जो सत्य है, उसको स्वीकार करो। तो सत्य क्या है? कि पर्सनल कुछ नहीं है, जो कुछ है यूनिवर्सल है, पर्सनल नहीं है। इसको जीवन में ढालोगे कैसे? कि मेरा कुछ नहीं है। जिस वाणी से बोलता हूँ वह मेरी नहीं है, जिन कानों से सुनता हूँ, वे मेरे नहीं हैं। अच्छा जो चीज अपनी नहीं है, उसका नाजायज इस्तेमाल मत करो, जो चीज अपनी है उसके सही इस्तेमाल का फल मत चाहो। क्योंकि अपनी कोई चीज है नहीं तो फल किस बात का चाहते हो भाई। चाहो भी मत और नाजायज इस्तेमाल भी मत करो। एक का नाम कर्त्तव्य विज्ञान है, एक का नाम अध्यात्म विज्ञान है। अध्यात्म विज्ञानी कौन है? जिसे कुछ नहीं चाहिए, वह अध्यात्म-विज्ञानी है और जिसको सही काम करना आता है, वह कर्त्तव्य विज्ञानी है। तो मिले हुए बल के द्वारा सही काम करो और बदले में कुछ मत चाहो। तो सही काम करने से सारा संसार आपसे प्रसन्न हो जाएगा और कुछ न चाहने से आपकी कीमत संसार से अधिक हो जाएगी।

प्रवचन 6

मेरे निजस्वरूप महानुभाव तथा भाई और बहन!

अचाह हो जाएँ, स्वाधीन हो जाएँ—अपने लिए। और आप यह हो सकते हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं होगी। उदार होने में कोई कठिनाई नहीं, स्वाधीन होने में कोई कठिनाई नहीं। प्रेमी होने में कोई कठिनाई नहीं। उदार होने का अर्थ क्या है? किसी न किसी नाते सभी को अपना मान लें। अपना मान लेंगे तो क्या होगा? सुखियों को देखकर चित्त प्रसन्न हो जाए, दुखियों को देखकर हृदय करुणित हो जाए। इसमें कोई धन तो व्यय होगा नहीं। कोई धन खर्च नहीं होगा। बहुत लाभ होगा समाज को भी और अपने को भी।

जब सुखियों को देखकर प्रसन्न होंगे, तो सुखी जन आपकी आवश्यकता अनुभव करेंगे तथा आपमें प्रसन्नता आ जाने से निष्कामता पुष्ट हो जाएगी। दुखियों को देख कर करुणित होंगे, तो सुख-भोग की रुचि मिट जाएगी। भोग की रुचि का नाश हो जाएगा और आपको योग की प्राप्ति हो जाएगी। उदारता से लोक का भी हित हुआ और परलोक भी बन गया। यानि अध्यात्म-जीवन में भी प्रवेश हो गया और

लौकिक हित हो गया। और आपका कुछ खर्च नहीं हुआ इसमें और न कुछ कठिनाई उठानी पड़ी।

लेकिन भाई, सभी को मानना पड़ेगा। केवल दो बातें होती हैं, करुणित होने के लिए और प्रसन्न होने के लिए; उदार होने के लिए। उदार का अर्थ है—करुणित होना, प्रसन्न होना। दुखियों को देखकर करुणित होना, सुखियों को देख कर प्रसन्न होना—यह उदारता है। और करुणित होने से भी भोग की रुचि नाश हो जाती है। दुखित होने से काम का नाश हो जाता है। काम का नाश होने से भी राम की प्राप्ति हो जाती है। प्रसन्न होने से काम का नाश हो जाता है। उदार होने से भी योग की प्राप्ति होती है।

ऐसे ही स्वाधीन भी होना है। स्वाधीन होने से बहुत लाभ होता है, बहुत बड़ा लाभ होता है। और स्वाधीन होने में आप पराधीन नहीं हैं। मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए—स्वाधीन हो गए। मेरा कहने से मेरा हो तो जाता नहीं, चाह होने से चाह पूरी तो हो नहीं जाती। और अचाह होने से कोई चाह पूरी न हो, ऐसा भी नहीं होता। और अचाह होने से भी कुछ चाह तो पूरी हो ही जाती हैं। कुछ बिना पूरी हुए नाश हो जाती हैं, कुछ पूरी होने पर नाश हो जाती हैं। अचाह होने का अर्थ यही है—कुछ कामनाएँ—आवश्यक कामनाएँ पूरी होकर नाश हो जाएँ, अनावश्यक कामनाएँ उत्पन्न ही न हों तो जब अनावश्यक कामनाएँ उत्पन्न नहीं होंगी, तो कामना-निवृत्ति से आपको शान्ति मिल जाएगी। और आवश्यक कामनाएँ पूरी हो जाएँगी, तो आपको सुख मिल जाएगा। सुख और शान्ति दोनों मिल गये। कैसे? अचाह होने से।

और निर्मम होने से निर्विकारता मिल गई। 'मेरा कुछ नहीं है—इससे मोह का नाश हो गया, लोभ का नाश हो गया। अभिमान का नाश हो गया, दीनता का नाश हो गया, परिच्छिन्नता का नाश हो गया। यह सब आध्यात्मिक जीवन है। 'मेरा कुछ नहीं चाहिए' इससे बहुत लाभ होता है, 'मुझे कुछ नहीं चाहिए' इससे बहुत लाभ होता है। और 'मैं प्रभु का हूँ' इससे बड़ा लाभ होता है। मनुष्य अभय हो जाता है। भय का नाश हो जाता है। और 'सब कुछ प्रभु का है' इससे बहुत बड़ा लाभ होता है।

यह जीवन का सत्य है। सत्संग सुन रहे थे न आप? जो सत्संग करेगा, वह जीवन के सत्य को स्वीकार करे। 'मेरा कुछ नहीं है'—इस सत्य को स्वीकार करे, 'मुझे कुछ नहीं चाहिए'—इस सत्य को स्वीकार करे। प्रभु अपने हैं इस को स्वीकार करे। सब कुछ प्रभु का है स्वीकार करे। मान लें ऐसा है और उसको पसन्द कर लें, निस्संदेह हो जाएँ—यह सत्संग हो गया। तो सत्संग कोई ऐसी चीज नहीं है, कि जिसको आप कर नहीं सकते या जो आपसे नहीं हो सकता। सत्संग हो सकता है।

सत्संग का फल ही होता है—साधन का निर्माण। साधन के निर्माण का अर्थ होता है कि साधना और जीवन एक हो जाता है। जैसे यदि आपने मान लिया कि मेरा कुछ नहीं है तो निर्विकारता रूपी साधना प्राप्त हो जाएगी। मुझे कुछ नहीं चाहिए तो शान्ति रूपी साधना प्राप्त हो जाएगी। और अब आप अपने में संतुष्ट हो जाएँगे तो अपने में संतुष्ट होने से जीवन-मुक्ति मिल जाएगी और परमात्मा मिल जाएगा। ये दोनों बातें हो जाती हैं। अगर मनुष्य केवल अचाह होना पसन्द करे, तो जीवनमुक्ति भी मिल जाए और परमात्मा भी मिल जाए। अचाह होने से ही। क्यों? अचाह होने से संसार के सम्बन्ध की निवृत्ति हो जाएगी।

संसार के सम्बन्ध की निवृत्ति हो जाएगी तो संसार का सम्बन्ध टूट जाएगा और परमात्मा की समीपता प्राप्त हो जाएगी। जब हम कुछ चाहते हैं, तो परमात्मा से दूर होते हैं। अगर आप कुछ न चाहें, तो परमात्मा की समीपता प्राप्त हो जाएगी। तो संसार की निवृत्ति और परमात्मा की प्राप्ति यह कैसे प्राप्त हुई? अचाह होने से। अचाह होने में क्या खर्च हुआ आपका, क्या परिश्रम हुआ आपका। अगर ऐसा कानून होता कि जो आप चाहेंगे, वह हो ही जाएगा—ऐसा सम्भव नहीं है। यह तो बहुत दूर की बात है। उन दिनों देवकी जी सत्संग में आई-आई ही थीं। साल दो साल ही हुआ होगा। बिहार में छपरा नाम की एक जगह है, वहाँ सत्संग हो रहा था। देवकी जी जब व्याख्यान देती हैं, तो अपनी दशा का वर्णन करती हैं ज्यादातर। यह बहुत अच्छा तरीका है। तो कह रही थीं, कि जो मैं चाहती हूँ, सो होता ही नहीं, जो होता है, सो मुझको अच्छा लगता ही नहीं, जो अच्छा लगता है, वह रहता ही नहीं। ऐसा कह रही थीं। यह जीवन का सत्य है। इस बात का अनुभव आपको भी हो सकता है। एक एम०ए० पास लड़का बैठा हुआ था मेरे पास, वह रोने लगा कि दीदी ने तो जीवन का चित्र खींच दिया। उसके बाद मुझे बोलना था। मैंने कहा कि जब आप जानती ही हैं कि जो मैं चाहती हूँ, वह नहीं होता, तो चाह ही छोड़ दो। यह तो हो सकता है न। जब यह हम जानते ही हैं कि जो हम चाहते हैं वह होता ही नहीं है, तो चाह छोड़ने में तो कोई कठिनाई नहीं है। तो अचाह होने से कुछ कामनाएँ, जो जरूरी कामनाएँ हैं—हमारे हिसाब से नहीं, प्रकृति के विधान से जो जरूरी कामनाएँ हैं, वे जरूर पूरी हो जाएँगी। और जो अनावश्यक कामनाएँ हैं, वे नाश हो जाएँगी। तो जरूरी कामनाएँ पूरी होकर नाश हो गईं और अनावश्यक कामनाएँ उत्पन्न ही नहीं हुईं। बिना उत्पन्न हुए ही नाश हो गईं। कामना-निवृत्ति में शान्ति है और कामना-पूर्ति में सुख है।

तो सुख भी आपको मिल गया और शान्ति भी आपको प्राप्त हो गई। इसके लिए आपने किस सत्य को स्वीकार किया? केवल यह स्वीकार करने से कि मुझे कुछ नहीं चाहिए।

न चाहने पर भी कुछ संकल्प तो पूरे होते ही हैं, और चाहने पर सभी संकल्प पूरे होते नहीं। पर देखिए कितनी भूल की बात है। कितना जीवन का सत्य है कि चाहने से हमारे सभी संकल्प पूरे हो जाएँ, सो तो होंगे नहीं और न चाहने से हमारा कोई संकल्प पूरा न हो तो ऐसा होता नहीं। इसलिए चाह का जीवन में कोई स्थान ही नहीं है।

यह जीवन का इतना बड़ा सत्य है कि अगर यदि हम कुछ न चाहें, तो उससे हमारी कोई हानि नहीं होती। जैसे बुराई-रहित होने से अपनी कोई हानि नहीं होती। जैसे दूसरों के साथ भलाई करने से अपनी कोई हानि नहीं होती। तो इसका यह अर्थ निकला कि भलाई करने से कोई हानि नहीं होती। क्यों? विधान क्या है कि दूसरों के साथ जो कुछ करेंगे, कालान्तर में कई गुना अधिक होकर आपके साथ हो जाएगा। तो अपना भला भलाई करने में हुआ, अपना भला बुराई न करने में हुआ अब यह जीवन का विधान है, यह जीवन का सत्य है।

अगर इस सत्य को मान लें आज हम, कि बुराई-रहित होने से लाभ होता है, भलाई करने से लाभ होता है, तो संसार में जितने संघर्ष हैं सब मिट जाएँ। मिट जाएँ या न मिट जाएँ? जरूर मिट जाएँ। किन्तु इस सत्य पर ध्यान ही नहीं जाता। तो मानव सेवा संघ ने कहा कि भाई, देखो—जीवन का जो सत्य है, उसे यदि आप स्वीकार नहीं करेंगे तो न तो आपको व्यक्तिगत शान्ति मिलेगी, न सामूहिक शान्ति मिलेगी, न अपना कल्याण होगा, न सुन्दर समाज का निर्माण होगा, न भगवत् प्राप्ति होगी न चिर शान्ति मिलेगी, न जीवन-मुक्ति मिलेगी।

अगर आप इस सत्य को स्वीकार कर लें, तो अपना भी कल्याण होगा, चिरशान्ति भी मिलेगी, जीवन-मुक्ति भी मिलेगी और भगवत्-भक्ति भी मिलेगी। क्योंकि सत्य को स्वीकार करने से साधन का उदय होता है। साधन और जीवन एक हो जाता है। जैसे, अगर आपने यह सत्य स्वीकार किया कि अच्छा भाई, जब यह विधान ही है, कि मेरे चाहने से सभी कामना पूरी नहीं होतीं, तो मैं अचाह होने का व्रत लेता हूँ। जब यह विधान ही है कि मिली हुई वस्तु से अलग होना ही पड़ेगा। मिली हुई वस्तु अलग होती ही है। मिली हुई वस्तु अलग है ही। तो जो वस्तु मुझसे अलग है उसको अगर मैं अपना न मानूँ, तो कुछ हानि तो होती नहीं। जब दूसरों के साथ की हुई बुराई से हानि होती है, तो मैं बुराई न करूँ। इसमें कुछ हानि तो होती नहीं। जब दूसरों के साथ भलाई करने से अपनी भलाई होती है, तो इसमें कोई हानि तो है नहीं। तो सर्वांश में आप भलाई कर सकते हैं और सर्वांश में बुराई छोड़ सकते हैं।

तो बुराई छोड़ने से भी आपका लाभ, और भलाई करने से भी आपका लाभ, अपने आप ही होगा। चाहो कुछ मत। क्योंकि जब तक अचाह नहीं होते तब तक बुराई-रहित होने की सामर्थ्य नहीं आती, भलाई करने की सामर्थ्य नहीं आती। अचाह होने से यह सब बात आ जाती है क्योंकि अचाह होने पर मोह नहीं रहता, लोभ नहीं रहता और भय नहीं रहता। निर्मोहता, निर्लोभता, निर्भयता, समता, मुदिता, यह जीवन का सत्य है, यह साधना है। निर्लोभता, निर्मोहता, समता, मुदिता, प्रसन्नता प्राप्त होती है। समता प्राप्त होती है समता माने योग के होते हैं। और मोह नहीं रहता तो निर्भयता प्राप्त हो जाती है। निर्लोभता से दरिद्रता नाश हो जाती है—यह जीवन का विज्ञान है।

तो मैं यह कह रहा था कि आज जीवन में कठिनाई इसलिए हो रही है कि जो जीवन का सत्य है, उसे हम स्वीकार नहीं करते। और सत्य को जब स्वीकार नहीं करते हैं तो साधक कहते हैं कि साधन बड़ा कठिन है। तो साधन तो इसलिए कठिन है न, कि आप अचाह होते नहीं और कहते हैं कि शान्ति बड़ी कठिन है। कठिन क्या, होगी ही नहीं। अचाह हुए बिना शान्ति मिलेगी नहीं। निर्भय होते नहीं और कहते हैं कि निर्विकारता बड़ी कठिन है। चाह—रहित होते नहीं और कहते हैं कि प्रभु-प्रेम बड़ा कठिन है। यदि सत्य को स्वीकार करें तो साधन कठिन नहीं हैं, साधन सहज है। और सत्य को स्वीकार न करें तो साधन असम्भव है, सम्भव ही नहीं है।

इसलिए सत्संग को ही परम पुरुषार्थ माना। सत्संग ही परम पुरुषार्थ है। और कोई परम पुरुषार्थ नहीं है। लेकिन सत्संग का अर्थ यह व्याख्यान सुनना नहीं है। यह तो सत्चर्चा है, सोचना-समझना यह सच्चिन्तन है, सत्संग है, सत्य को स्वीकार कर लेना। 'मेरा कुछ नहीं हैं' यह सत्य है। मुझे कुछ नहीं चाहिए—यह सत्य है। क्यों? मुझे दो तरह से नहीं चाहिए। एक तो जो चाहते हैं वह होता ही नहीं तो चाहने से क्या फायदा। और दूसरी बात यह कि जो सचमुच मुझे चाहिए वह अपने में मौजूद है। अगर भगवान चाहिए तो भगवान अपने में मौजूद है। सत्य चाहिए तो सत्य अपने में मौजूद है। अमरत्व चाहिए तो अमरत्व अपने में मौजूद है। सर्व दुःखों की निवृत्ति चाहिए तो सर्वदुःखों की निवृत्ति अपने में मौजूद है।

तो अपने को जो चाहिए वह अपने में है। तो जब अपने में है, तो उसकी फिर चाह क्यों करें। और जो संसार में नहीं है, उसकी भी चाह क्यों करें। संसार में अपना कुछ नहीं है, तो उससे क्या चाहें। न

संसार से कुछ चाहें न परमात्मा से कुछ चाहें। अचाह हो जाएँ यह जीवन का सत्य है। तो अचाह होने से अपने में अपने परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है और संसार के सम्बन्ध की निवृत्ति हो जाती है। और संसार के सम्बन्ध की निवृत्ति होने से आपका बहुत लाभ होता है।

देखिए, संसार दुःखद नहीं है, संसार का सम्बन्ध दुःखद है। आप विचार करके देखो कि इसी समय अगर पता लगाया जाए, बम्बई में सारे शहर में यह पता लगाया जाए तो कितनी ही चिताएँ जल रही होंगी। रोया-राट हो रहा होगा कितने ही घरों में, कहीं खुशी हो रही होगी। कहीं हानि हो रही होगी, कहीं लाभ हो रहा होगा। लेकिन क्योंकि उससे हमारा आपका सम्बन्ध नहीं है, तो हमको न हर्ष हो रहा है न विषाद हो रहा है। आप समता में शान्त बैठे हुए हैं। तो अपना न मानने का कितना बड़ा प्रभाव होता है। और अपना मानना तो तब सम्भव होता जब अपना अधिकार होता। अधिकार अपना है ही नहीं। हम जब तक चाहें शरीर को रख ही नहीं सकते। तो शरीर को अपना मानने का क्या फायदा? जब जो चाहें वह हो नहीं सकता, तो चाहने से क्या फायदा?

निर्भय होना और अचाह होना, यह बहुत ही स्वाभाविक सत्य है जीवन का। निर्भय होना ही पड़ेगा। 'मेरा कुछ नहीं है' संसार में इसको मान लेना ही पड़ेगा। 'मुझे कुछ नहीं चाहिए संसार से' यह बात माननी ही पड़ेगी। क्योंकि मुझे जो चाहिए, वह संसार दे नहीं सकता। और मुझे कुछ नहीं चाहिए परमात्मा से यह बात मान लेनी चाहिए। क्यों? क्योंकि अगर मैं कुछ चाहूँगा, तो परमात्मा, से दूर हो जाऊँगा, अलग हो जाऊँगा। तो परमात्मा से अलग होने से तो कोई लाभ होगा नहीं कोई, परमात्मा की तो प्राप्ति से लाभ होगा।

तो अचाह होने से, परमात्मा से कुछ न चाहो तो परमात्मा प्राप्त हो जाए और संसार से कुछ न चाहो तो संसार का सम्बन्ध छूट जाए। संसार नहीं छूट जाएगा, सम्बन्ध छूट जाएगा। अच्छा बुराई छोड़ दो तो कर्त्तव्यपरायणता आ जाए। बुराई नहीं करूँगा, मैं ऐसा मान लूँगा तो कर्त्तव्यपरायणता आ जाए। कर्त्तव्यपरायणता से जगत् के अधिकार की रक्षा हो जाए। और अचाह होने से अपने को स्वाधीनता मिल जाए, परमात्मा मिल जाए। तो कितना बड़ा लाभ हुआ बताइये।

और हमने क्या किया? किस सत्य को स्वीकार किया? बुराई नहीं करूँगा, इस सत्य को स्वीकार किया। मुझे कुछ नहीं चाहिए, इस सत्य को स्वीकार किया। मेरा कुछ नहीं है, इस सत्य को स्वीकार किया। इसी को सत्संग कहते हैं। और आप व्याख्यान रोज सुनें और यह सोचें कि 'आत्मवत सर्वभूतेषु अर्थात् अपने समान सब को समझो। समझा नहीं अपने भाई को भी, मित्र को भी अपने समान नहीं समझा, लुगाई को भी अपने समान नहीं समझा। यह क्या है? यह सत्संग नहीं। इन बातों को सुन लिया कि 'आत्मवत् सर्व भूतेषु'। इन बातों को स्वीकार कर लो, तो सत्संग हो जाएगा। अभी तो वेद-वाणी से सुना है कि अपने समान दूसरों को समझो। यह जाना हुआ है, कि मेरे साथ कोई बुराई न करे। तो बुराई न करना यह जाना हुआ सत्य है। और दूसरों को अपने समान समझना, यह सुना हुआ सत्य है। उसे भी मान लो उसे भी मान लो। परमात्मा है—यह सुना हुआ सत्य है, संसार में मेरा कुछ नहीं है—यह जाना हुआ सत्य है। इस तरह जो जीवन का सत्य है, उसे स्वीकार कर लो।

और अगर जीवन के सत्य को स्वीकार कर लोगे, तो असाधन का नाश हो जाएगा, साधन की अभिव्यक्ति हो जाएगी। जब असाधन

का नाश हो जाता है और जब साधन की अभिव्यक्ति हो जाती है, तो साधन और जीवन में एकता हो जाएगी। साधन और जीवन अलग अलग जो दिखाई देता है कि मैं अलग हूँ और मेरी साधना अलग है, यह नहीं रहेगा। मैं और साधना एक हो जाएगी। जीवन और साधना एक हो जाएगी। साधना जब जीवन हो गई और जीवन जब साधना हो गया, तो आपको कोई कठिनाई ही मालूम नहीं पड़ेगी। क्योंकि जब अभिन्नता हो गई साधना से तो साधना जीवन हो गई, जीवन साधना हो गया। साधना सहज हो गई, स्वाभाविक हो गई। अपना स्वरूप ही हो गया। साधना और जीवन की एकता होनी चाहिए। साधना और जीवन में भिन्नता नहीं रहनी चाहिए।

साधना क्या है? जैसे निर्विकारता, चिरशान्ति, स्वाधीनता, अखण्ड स्मृति, अगाध प्रियता—यह साधना है। जब मुझ में प्रिय में प्रियता उदित हो गई तो प्रियता उदित होने से क्या होगा? प्रियता उदित होने से स्मृति उदित हो गई। स्मृति उदित होने से निर्मोह हो गया, निर्विकारता आ गई, चिरशान्ति आ गई, स्वाधीनता आ गई। तो स्वाधीनता, निर्विकारता, चिरशान्ति, स्मृति, प्रियता यह सब साधना है।

यह साधना जब अपना जीवन हो जाए, अपना स्वरूप हो जाए, तो यह साधना जो है साध्य से मिला देती है। हम निर्विकार होकर परमात्मा से मिल जाते हैं। हम शान्त होकर परमात्मा से मिल जाते हैं। हम स्वाधीन होकर परमात्मा से मिल जाते हैं। हम उदार होकर परमात्मा से मिल जाते हैं, हम प्रेमी होकर परमात्मा से मिल जाते हैं।

तो साधन करना नहीं है? करना है सत्संग। करना है सत्संग, होना है साधन, मिलना है साध्य। सत्संग करोगे, साधन होगा और साध्य मिलेगा। यह बात आपके समझ में आती है या नहीं? तो मैं यह

निवेदन कर रहा था कि सत्संग करो, साधन स्वतः होगा। अब आपने कहा कि परमात्मा का नाम तो लिया लेकिन संसार की ममता को तोड़ा नहीं तो नतीजा क्या होगा? कि हे भगवान मेरी यह कामना पूरी हो जाए, मेरी यह कामना पूरी हो जाए—यही रहेगा। परमात्मा का चिन्तन भी किया और सम्बन्ध संसार से ही रहा तो यह साधन नहीं असाधन है। उसका नतीजा यह होगा कि परमात्मा मिलेगा ही नहीं।

चाहे कितना ही चिन्तन कीजिए, कितना ही ध्यान कीजिए कितनी ही साधना कीजिए लेकिन अगर आपने सत्संग कर लिया पहले कि मेरा कुछ नहीं है, तो संसार का सम्बन्ध टूट गया। और फिर परमात्मा को याद किया, तो परमात्मा आप को मिल जाएगा। क्योंकि ऐसा नहीं होता कभी, संसार का सम्बन्ध भी बना रहे और परमात्मा का सम्बन्ध भी बना रहे। सम्बन्ध एक से ही रहेगा दो से नहीं रहेगा।

बुराई भी चलती रहे और भले भी हो जाएँ ऐसा कभी नहीं होगा। जब तक सर्वांश में बुराई का त्याग नहीं करेंगे, भले होंगे ही नहीं। भले होने के लिए भी सत्संग जरूरी है, परमात्मा को पाने के लिए संसार के सम्बन्ध का त्याग करना, जरूरी है। परमात्मा हम से दूर नहीं हुआ, हममें मौजूद है। लेकिन हमने दूसरी चीजों से सम्बन्ध जोड़ करके अपने को परमात्मा से विमुख किया है। विमुख होने का क्या अर्थ है? विमुख होने का अर्थ है अपना मुँह फेर लेना। हमने अपना मुँह फेर लिया है परमात्मा की तरफ से। परमात्मा का मुख तो हमारी तरफ है ही, हमने संसार से सम्बन्ध जोड़ लिया है।

तो संसार का सम्बन्ध तोड़ो, संसार की सेवा मत छोड़ो। संसार की निन्दा मत करो। संसार को बुरा मत समझो। तो संसार की सेवा करो, परमात्मा को अपना मानो और संसार परमात्मा का मानो। संसार

परमात्मा का है, परमात्मा अपना है इसलिए भाई संसार की सेवा करना, यह परमात्मा की पूजा है। और पूजा के अन्त में परमात्मा के प्रेम का उदय होगा। चाहे तो ऐसा मान लो। ऐसा भी है कि चाहे तो तुम्हें परमात्मा की याद आएगी, नहीं तो तुम परमात्मा का काम करोगे तो परमात्मा को तुम्हारी याद आएगी तुम्हें परमात्मा प्यारा लगेगा और तुम परमात्मा को प्यारे लगोगे। जब परमात्मा की ओर से तुम्हारे में परमात्मा का प्रेम आएगा तो जीवन प्रेम से भर जाएगा। तो एक तो यह तरीका है।

अब यह भविष्य की बात तो है नहीं। जब परमात्मा सदैव होने से अभी मौजूद है, आपमें भी मौजूद है तो आपको अभी परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोडना पड़ेगा और संसार का सम्बन्ध तोड़ना पड़ेगा। क्योंकि संसार आप देख रहे हैं, कि उस पर आपका अधिकार नहीं है, वह आपके काबू में नहीं है। आपके अधीन नहीं है। आपके चाहते हुए भी बचपन चला गया, जवानी चली गई, बुढ़ापा आ गया। बहुत से संयोग वियोग में बदल गए। बहुत-सी उत्पत्ति विनाश में बदल गईं। यह तो देख ही रहे हैं आप।

तो जिस पर अपना कोई अधिकार नहीं है, उसका सम्बन्ध तोड़ देना चाहिए। उसकी सेवा नहीं छोड़ देनी चाहिए। सेवा करो और सम्बन्ध तोड़ो यही तो सलाह होगी मेरी। और परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। परमात्मा को पाने के लिए क्या करें। बल से तो परमात्मा मिलेगा नहीं। बल से तो अपने से कम बल की चीज प्राप्त होगी। योग्यता से अपने से कम योग्यता वाले की प्राप्ति होगी। और मूल्य से समान मूल्य की चीज पा सकते हो। परमात्मा तो अमूल्य है, अनन्त है, अपार है, उसकी महिमा का वारापार नहीं। इसलिए परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ कर ही परमात्मा की प्राप्ति होती है।

संसार का सम्बन्ध और परमात्मा का सम्बन्ध दोनों का सम्बन्ध रह सकता। संसार का सम्बन्ध रखोगे तो परमात्मा से दूर हो जाओगे। परमात्मा से सम्बन्ध रखोगे तो परमात्मा को पा जाओंगे। हमारा सम्बन्ध परमात्मा से हो, चाहे तो ऐसा मान लो और चाहे ऐसा मान लो कि सेवा करने के लिए, संसार से सम्बन्ध जोड़ लो और प्यार करने के लिए परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ लो। न कुछ संसार से माँगो न परमात्मा से माँगो। इससे बहुत बड़ा अन्तर आ जाएगा। संसार से कुछ नहीं माँगोगें तो संसार से निवृत्ति हो जाएगी। संसार से सम्बन्ध टूट जाने से आप संसार के प्रभाव से मुक्त हो जाओगे।

संसार का प्रभाव क्या है? पराधीनता, जड़ता, नीरसता, सुख-दुःख। यह संसार का प्रभाव है। यह संसार के सम्बन्ध से ही होता है। सुख भी संसार के सम्बन्ध से होता है। दुःख भी संसार के सम्बन्ध से होता है। अभाव भी संसार के सम्बन्ध से होता है। जड़ता और पराधीनता संसार के सम्बन्ध से होती है। शक्तिहीनता भी संसार के सम्बन्ध से होती है।

यदि संसार का सम्बन्ध नहीं रहेगा, तो जीवन में अभाव नहीं रहेगा, पराधीनता नहीं रहेगी, सुख की दासता नहीं रहेगी, दुःख का भय नहीं रहेगा। संसार के प्रभाव से मुक्त होने का नाम ही मुक्त होना है। और मुक्ति कोई चीज नहीं है। यह बन्धन संसार के प्रभाव का ही फल है। शरीर को अपना लिया तो मोह में बँध गए। मोह का दोष निवृत्त हो जाएगा तो निर्मोहता प्राप्त हो जाएगी। धन को अपना मान लिया तो लोभ में बँध गए। लोभ का सम्बन्ध समाप्त हो जाएगा, तो निर्लोभता प्राप्त हो जाएगी। इस तरह से संसार के सम्बन्ध से जो विकार पैदा होते हैं, जो दोष पैदा होते हैं वे सब दोष मिट जाएँगे। इसलिए संसार

से सम्बन्ध तोड़ने की बात है। परमात्मा के सम्बन्ध से, परमात्मा परम उदार है, परम स्वतन्त्र है, परमात्मा परम प्रेम से भरपूर है तो आपमें उदारता, स्वाधीनता और परम प्रेम का उदय हो जाएगा। आप ऐसे सोचिए कि एक लोहे का गोला है। आप उसे अग्नि में डाल दीजिए —गर्म हो जाएगा, बर्फ में डाल दीजिए तो ठण्डा हो जाएगा। ऐसे ही अहं जो है एक गोला है, लोहे के गोले के समान है। इसको संसार के सम्बन्ध से जोड़ दीजिए तो राग में द्वेष में, क्रोध में भोग में, पराधीनता में, जड़ता में बँध जाएगा और इसको भोग से हटा दीजिए, परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ लीजिए तो योग, बोध, प्रेम प्राप्त हो जाएगा। संसार के सम्बन्ध से भोग, मोह, आसक्ति पैदा होगी। परमात्मा के सम्बन्ध से योग, बोध, प्रेम प्राप्त होगा।

अब संसार का सम्बन्ध तोड़ने में, जब इस पर आपका स्वतन्त्र अधिकार ही नहीं है, तो क्या कठिनाई हो सकती है। ऐसे ही परमात्मा क्योंकि अपना है, अपने में है, अभी है, तो उससे सम्बन्ध जोड़ने में क्या कठिनाई हो सकती है। न तो संसार से सम्बन्ध तोड़ने में कोई कठिनाई है, न परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने में कोई कठिनाई है।

तो अब आपको भोग, मोह, आसक्ति से छूटना है, योग, बोध, प्रेम को प्राप्त करना है। तो परमात्मा से सम्बन्ध स्वीकार करो। मैं प्रभु का हूँ मैं प्रभु का हूँ जगत् में मेरा कुछ नहीं है, मुझे संसार से कुछ नहीं चाहिए यह मानने में क्या कठिनाई है। इसमें क्या कुछ कष्ट होता है, क्या कुछ धन खर्च होता है। हाँ जगत् में मेरा कुछ नहीं है, यह ठीक बात है। तो इसका मतलब यह हुआ कि जगत् का अर्थ क्या है? शरीर और जगत् तो एक ही हैं न, तो शरीर में भी मेरा कुछ नहीं है।

तो शरीर से जगत् को दुखी मत करो, शरीर से जगत् को हानि मत पहुँचाओ। आप जगत् की सेवा करोगे तो आप मुक्त हो जाओगे। और शरीर से विषयों का भोग करोगे तो बद्ध हो जाओगे। तो आप सोचें कि शरीर से भोग करना चाहिए या शरीर से सेवा करनी चाहिए। शरीर के दो ही उपयोग हो सकते हैं।

शरीर से हो सकता है भोग, शरीर से हो सकती है सेवा। अब विचार करके देखो—भोग का साथी है असंयम, सेवा का साथी संयम है। भोग का साथी सुख-लोलुपता है और सेवा का साथी तप है—तप, संयम, सेवा। सेवा करोगे तो तप आ जाएगा, संयम आ जाएगा और त्याग भी आ ही जाएगा, क्योंकि सेवा का अन्त त्याग में होता है। भोग करोगे तो असंयम आ जाएगा, दुराचार आ जाएगा, व्यभिचार आ जाएगा और मोह और आसक्ति में आबद्ध हो जाओगे। तो जीवन का जो सत्य है, वह है योग। इसमें ऐसी कोई बात नहीं है कि मेरे कहने से मान लो। आपको यह ठीक मालूम कि जीवन का सत्य इस प्रकार का है, तो आप सत्य को स्वीकार करें।

प्रवचन 7

मेरे निजस्वरूप उपस्थित महानुभाव तथा भाई और बहन!

अनजाने, अनदेखे परमात्मा में विश्वास कैसे हो, परमात्मा को कैसे अपना माना जाए, इसके लिए बहुत कठिन बात नहीं है। बहुत सुगम उपाय है और वह उपाय क्या है? कि हम जब किसी के साथ अपने को मिलाना चाहते हैं, तो हमें क्या करना पड़ता है? अपने पर उसका अधिकार मान लेना और अपना अधिकार उस पर न मानना। अब आप देखिए, जो अपना अधिकार मानते हैं, वे दूसरे के सुख का ध्यान नहीं रखते और जो अपना अधिकार नहीं मानते हैं, उन्हीं के द्वारा दूसरों को सुख मिलता है। हमारे द्वारा सभी को सुख मिले-यह कब होगा? जब हम सबको अभय कर दें, इस बात से कि हमारा तुम पर कोई अधिकार नहीं है किन्तु तुम्हारा हम पर पूरा अधिकार है। क्योंकि जो किसी का अधिकार होता है न, वह किसी का कर्त्तव्य हो जाता है। तो संसार का जो अधिकार है, वह मनुष्य का कर्त्तव्य, परमात्मा का जो अधिकार है, वह मानव का कर्त्तव्य।

संसार का अधिकार क्या है? कि जहाँ तक हो सके हम सभी के प्रति सद्भाव रखें, सहयोग का भाव रखें, काम आएँ और बदले में कुछ

न चाहें। और प्रभु का अधिकार क्या है? कि वे हमको आत्मीयता के नाते प्यारे लगें, इतना ही अधिकार है। परमात्मा को हमारे प्यार की माँग है और संसार को हमारी सहायता की माँग है। सहायता शरीर के द्वारा की जाती है और प्यार अपने द्वारा किया जाता है। यह बड़े रहस्य की बात है। यानि, प्यार जो है, वह मनुष्य स्वयं के द्वारा करता है और सहायता जो है, वह मिले हुए तन के द्वारा, धन के द्वारा, योग्यता के द्वारा करता है। बिना किसी वस्तु के, बिना किसी योग्यता के, बिना किसी सामर्थ्य के हम कोई सहायता कर पाते हैं क्या? तो सहायता के लिए संसार है और प्रेम के लिए परमात्मा है। क्योंकि प्रेम अपने द्वारा होता है, इसलिए वह सम्भव है और सहायता पर की होती है और पर के द्वारा होती है, इसलिए वह भी सम्भव है।

अब यहाँ एक बात सोचने की है कि भई दूसरों की सहायता करना सम्भव तो है। क्यों? क्योंकि हमारे पास कुछ न कुछ है। और प्रेम करना भी सम्भव है। क्यों? क्योंकि प्रेम देने में कोई धन तो खर्च होता नहीं। लेकिन बिना अपनेपन के प्रेम होता है क्या? अब आप सोचिए, कि क्या आप भगवान को अपना मानने के लिए राजी हैं या जिसको प्रेम देना चाहते हैं, उसको अपना मान सकते हैं क्या? वे कैसे हैं, वे कहाँ रहते हैं, वे क्या करते हैं—ये सब बातें तो तब जरूरी होती हैं जानना जब उनके द्वारा कुछ काम लेना हो। जैसे, मान लीजिए कि कोई बीमार है तो वह पता लगाएगा कि डॉक्टर कैसा है। क्यों? उसको उससे कुछ लेना है यों। लेकिन जिसको केवल प्रेम देना है वह काहे को इस बात को जानने की कोशिश करेगा, कि वह कैसा है। प्यार जो होता है न, वह अपने से होता है, जिसको हम अपना मानते हैं। प्यार और किसी बात से नहीं होता। जैसे मान लीजिए एक पड़ौसी का

लड़का है, आपके लड़के से ज्यादा योग्य है, ज्यादा सुन्दर है, ज्यादा गुणवान है, तो उसको देख कर आप खुश तो हो सकते हैं। मनुष्यता के नाते आप कह सकते हैं कि बड़ा अच्छा लड़का है लेकिन उसकी माँ को वह जितना प्यारा लगता है, उतना प्यारा वह आपको लगेगा? क्यों? क्योंकि उसे वह अपना मानती है। तो प्रेम जो होता है, इस बात पर नहीं होता है कि कैसा है, इस बात पर होता है कि अपना है। कैसा है, इस बात की कब जरूरत होती है जब उससे हमें कुछ लेना हो। यानि, अपने सुख के लिए आदमी सोचता है कि अमुक वस्तु कैसी है, अमुक व्यक्ति कैसा है। लेकिन जिसमें अपने सुख का प्रश्न न हो, वह काहे की सोचेगा। अच्छा, जब तक हमारे अपने सुख का प्रश्न रहता है, तब तक क्या हम स्वाधीन हो पाते हैं, उदार हो पाते हैं, प्रेमी हो पाते हैं।

इसलिए प्रेमियों ने इस बात की परवाह कभी नहीं की कि हमारे प्रेमास्पद कैसे हैं। क्यों? क्योंकि क्या उन्हें उनसे कुछ लेना था? एक बात। दूसरी बात सोचिए—आपके केवल प्रेम का पान कौन कर सकता है? जिसे कुछ और चाहिए, वह केवल प्रेम से प्रसन्न नहीं होता। किसे कुछ और नहीं चाहिए? जो पूर्ण हो या उसे परमात्मा कहो। तो केवल प्रेम से वही प्रसन्न होगा, जो पूर्ण हो। अच्छा, प्रेम देने की सामर्थ्य किसमें होती है, जो अचाह हो। आप सोचिए एक ऐसा, जिस पर सब कुछ है, उसको प्रेम पसन्द आ सकता है? या प्रेम से उसके साथ आपकी एकता हो सकती है। एक ऐसा, जिसे कुछ नहीं चाहिए और जिसके पास अपना कर के कुछ नहीं है, वह ही प्रेम दे सकता है। और जिस पर सब कुछ है, वह ही केवल प्रेम से प्रसन्न हो सकता है।

इस दृष्टि से यदि देखा जाए, तो आपके प्रेम का पात्र कौन होगा? जिसके पास सब कुछ हो, जिसे कुछ नहीं चाहिए। और प्रेम दे

कौन सकता है? जिसे कुछ नहीं चाहिए और जिसके पास कुछ न हो। सब कुछ जिसके पास है, वह प्रेम से प्रसन्न होगा और जिसके पास कुछ नहीं है, जिसे कुछ नहीं चाहिए, वही प्रेम दे पाएगा। तो प्रेम देने के लिए तो बातें जरूरी हो गईं—मेरे पास मेरा करके कुछ नहीं है और मुझे कुछ नहीं चाहिए। और तीसरी बात—जिसको प्रेम देना है, वही मेरा अपना है और कोई मेरा अपना है नहीं। और मुझे अपने को सुख देने की बात जीवन में रखना है। जो मेरा है, उसको रस मिलना चाहिए, उसको रस देना चाहता हूँ, उसको सब प्रकार से आनन्द में देखना चाहता हूँ। तो वह प्रेम दे सकता है और वह प्रेम पा सकता है।

देखिए, आपको इतनी सामर्थ्य मिल जाए कि जो आप चाहें वह ही हो जाए और एक यह सामर्थ्य मिल जाए कि उसे कुछ चाहिए ही नहीं। तो जिसे कुछ नहीं चाहिए और जो चाहे सो हो जाए तो उन दोनों में अन्तर कहाँ रहा। अच्छा, हम जो चाहें, सो हो जाए, इसमें हम स्वाधीन हैं कि हम कुछ न चाहें इसमें हम स्वाधीन हैं? तो जिस बात में आप स्वाधीन हैं, वही बात आपको सबसे अच्छी माननी चाहिए। जिसके पास कुछ नहीं है और जिसे कुछ नहीं चाहिए, उसको कोई भयभीत कर सकता है क्या? जिसे कुछ भी चाहिए और जिसके पास कुछ भी है, वह कभी अभय हो सकता है क्या? वह कभी स्वाधीन हो सकता है क्या?

अब आप सोचिए, कि आपको अभय होने में आनन्द आता है, स्वाधीन होने में आनन्द आता है या भयभीत होने में और पराधीन रहने में? अच्छा, उसका उपाय तो आप कर सकते हैं। फिर क्यों नहीं करते? कर सकते हैं और कहते हैं—होता नहीं। मैं तो यह कहता हूँ कि जिसके पास कुछ नहीं और जिसे कुछ नहीं चाहिए, उसे कोई

भयभीत कर सकता है क्या? वह पराधीन हो सकता है क्या? वह अशान्त हो सकता है क्या? तो अभय होने में, शान्त होने में, स्वाधीन होने में कौन स्वाधीन है? या तो वह, जिसके पास सब कुछ हो, या वह, जिसके पास कुछ न हो। तो सब कुछ वाली बात में हमारा-आपका नाम लिखा जा सकता है क्या? वह तो एक ही होगा। कहने का मतलब यह था कि जिस तरह पूर्ण परमात्मा अभय है, स्वाधीन है, चिरशान्त है आनन्द से भरपूर है, उसी तरह जिसके पास कुछ नहीं है, जिसे कुछ नहीं चाहिए, वह भी उसी प्रकार अभय और स्वाधीन है।

जिसे कुछ नहीं चाहिए, जिसके पास कुछ नहीं है, वह क्या प्रभु को अपना नहीं मान सकता? तो प्रभु को अपना मानने में कोई कठिनाई है क्या? अच्छा, जिसे अपना मान लेते हैं, वह क्या प्यारा नहीं लगता? तो इसका मतलब क्या हुआ कि भगवान को अपना मानने की स्वाधीनता मनुष्य को है, भगवान को प्रेम देने की स्वाधीनता मनुष्य को है। स्वयं स्वाधीन रहने की, शान्त रहने की, अभय रहने की स्वाधीनता मनुष्य की है। यह तो आप लोगों के दिमाग की सफाई के लिए कहा।

अब आप सोचिए कि संसार के इतिहास में कोई भी प्रेमी ऐसा नहीं हो सकता, जिसने सचमुच इस सत्य को न अपनाया हो। तो आप देखो भाई, सत्य युग में, त्रेता में, द्वापर में जितने प्रेमी हुए उनको जिस प्रकार की स्वाधीनता थी, क्या उस प्रकार की स्वाधीनता आज नहीं है क्या? लेकिन यदि कोई प्रेमी न होना चाहे तो। चाहे पुराने भक्त हों या नए भक्त हों भक्ति का जो विधान है, सत्य का जो विधान है, वह जैसा पहले था, वैसा ही अब है और वैसा ही आगे रहेगा।

आप देखिए, भक्तिमती मीरा यानि द्वापर की गोपी के जीवन और कलियुग की मीरा के जीवन में कोई फर्क नहीं कर सकता। आप

देखिए, एक भक्त के सम्पर्क से यह बात मीरा जी को पसन्द आ गई कि मैं श्रीकृष्ण की नित्य प्रिया हूँ, पत्नी हूँ। यह बात गुरु वाक्य के आधार पर मीरा जी ने अपनी मर्जी से स्वीकार की या किसी और ने कराई। यह बात मैं इस आधार पर कहता हूँ कि भक्ति स्वतन्त्र है। जब चाहो तब आपको मिल सकती है। क्यों? आप अपने द्वारा जब भगवान को स्वीकार करते हैं, अपना करके स्वीकार करते हैं, तब अपने में भक्ति आती है। तो मीरा जी ने यह बात मान ली कि मेरा जो पति है वह गिरधर गोपाल है। मीरा ने श्रीकृष्ण को अपना पति करके मान लिया। आप जानते हैं, यह स्वाभाविक बात है, जिसे कोई अपना मान लेता है, उसकी याद आती है, फिर कुछ और सुहाता नहीं।

अच्छा वहाँ निराश होने की बात है नहीं। जैसे संसार की बात स्वीकार कर लेते हैं न, याद उसकी भी आती है, वह भी अच्छी लगती है, किन्तु उससे निराश होना पड़ता है। या तो हम उससे अलग हो जाएँगे या वह हमसे अलग हो जाएगा। यह प्रकृति का कानून है। लेकिन जो भगवान सदैव है, सर्वत्र है, सभी का है उससे निराश होने की जरूरत होती है क्या? तो जिसके मिलने में निराशा नहीं होती, उसकी स्मृति उत्तरोत्तर सबल और स्थायी होती है या नहीं? तो स्मृति को सबल बनाने में हम निराश न हों, इसके लिए इसके अतिरिक्त और कोई उपाय है क्या? नहीं है।

अब मीरा जी ने जब भगवान को अपना पति मान लिया, तो एक पहचान उनके पास थी। गिरधर गोपाल की मूर्ति थी न उनके पास। यहाँ भी दो बातें हैं—एक तो ऐसे विश्वासी होते हैं, जो यह मान लेते हैं कि यही भगवान हैं और कोई-कोई बुद्धिमान होते हैं, कि वे मानते हैं कि ऐसे भगवान हैं। जैसे, एक आपके पास आपके दोस्त की तस्वीर

आ जाए तो आप कहेंगे कि हमारा दोस्त ऐसा है। और एक कहेंगे हमारा दोस्त यह है। दोनों में फर्क होता है न?

मीरा जी उसी कोटि की भक्त थीं। पर उन्होंने जिसे अपना पति माना था, वे चाहती थीं वह मुझसे बोले, मेरे साथ खेले, मुझसे बातचीत करे लेकिन वह तो बोलता नहीं था। तो जब भगवान नहीं बोलते थे, नहीं मिलते थे, बात नहीं करते थे यानि वह व्यवहार नहीं करते थे, जो व्यवहार पति को अपनी पत्नी के साथ करना चाहिए। उसी दुःख में मीरा जी ने कहा—"भाई, मेरी हरि जी न पूछी बात"। हरि ने मेरी बात नहीं पूछी। अब जब वे बात नहीं पूछते, तो कह उठती हैं—

"प्रान पापी निकस क्यों न जात।" जिस स्त्री को अपने पति का प्यार न मिले, वह स्त्री क्या कभी चैन से रह सकती है। लेकिन पति का प्यार चाहती है या पति को प्यार देना चाहती है—पति के द्वारा अपना सुख चाहती है क्या? यदि सुख चाहती है तब तो निराश होना पड़ता ही है। मीरा के सम्बन्ध तो ऐसा मालूम पड़ता है कि वे अपने और पति के बीच में प्रेम का आदान-प्रदान चाहती हैं, कोई सुख-भोग नहीं चाहतीं। वे यह नहीं चाहतीं कि पति उसे अच्छे कपड़े पहना दे या अच्छा जेवर पहना दे। केवल यह चाहती हैं कि मैं पति के बिना न रह सकूँ और पति मुझे प्यारे लगते रहें। बस इतना चाहती हैं।

अच्छा, मीरा इतनी भोली भक्त हैं कि जब उसे पति की ओर से प्यार नहीं मिलता तो ऐसी शिकायत करती हैं—"मुख नहीं बोला, पट नहीं खोला, साँझ हुई परभात।" सारी रात बीत गई, दिन आ गया, सारा दिन बीत गया, रात आ गई लेकिन मेरा पति बोलता ही नहीं हैं। तो नहीं बोलता है तो बड़ा दुःख है, पर निराश हुई क्या? निराश नहीं है। निराश नहीं हैं, तो उत्तरोत्तर खूब गहरी स्मृति आती रहती है। इस स्मृति

में मीरा जी पर विरह की अग्नि का प्रभाव पड़ने लगा। मीरा जी बीमार रहने लगीं। उनका एक पद है—"बाबुल वैद बुलाइया, पकड़ दिखाई बाँह। जाओ वैद घर आपणे कसक कलेजे माँह॥" अर्थात् हे वैद्य जी तुम अपने घर जाओ। मेरे दिल में जो कसक है, उसकी चिकित्सा तुम्हारे पास है नहीं, वह तुम कर सकते नहीं। यानि मीरा जी किसी और की सहायता से मेरी माँग पूरी होगी—ऐसा नहीं सोचतीं।

क्या है मेरे पास? प्रिय की स्मृति। याद आती है। क्यों आती है? अपने हैं न। अपने की अपने को क्या याद नहीं आएगी? उनको प्रेम देना है न। और क्या बात है? वे उनकी महिमा से अपरिचित नहीं हैं। वे यह नहीं सोचतीं कि मेरे पति असमर्थ हैं या सर्वसमर्थ नहीं हैं, या सब कुछ नहीं कर सकते। मीरा यह भी नहीं सोचतीं कि वे पति की आज्ञा का उल्लंघन करती हैं। यह भी नहीं। लेकिन तुम आज्ञा तो दो, मुझसे काम तो लो। उनकी वाणी से यह बात कभी नहीं झलकती, कि मीरा जी ने यह कभी सोचा हो मैं अपने पति का अपनत्व भूलना चाहती हूँ। सुख देने की इतनी गहरी लालसा है मीरा जी में। और उन्हें कुछ सुहाता नहीं। पति सेवा का अवसर ही नहीं देता, प्यार का अवसर ही नहीं देता। उस समय मीरा जी बहुत अधिक अधीर होने लगीं, व्याकुलता बढ़ने लगी, बेचैनी बढ़ने लगी।

और इधर उनके पिता को उनके विवाह करने की सूझ गई। महाराणा के साथ उनका सम्बन्ध तय कर दिया। अब छोटी बच्ची हैं। इतना साहस तो है नहीं कि यह कह दें कि हम विवाह नहीं करेंगे। कुछ ऐसे भी भक्त हुए हैं, जो भाग गए घर से। एक भक्त महिला का गौना होने वाला था कि वह भाग गई घर से और एक मरे हुए ऊँट की दुर्गन्धमय खाल में छुप गई। लेकिन मीरा जी ऐसा नहीं कर सकती थीं

या ऐसा करना नहीं चाहती थीं। जोर जबरदस्ती तो बाहरी क्रिया-कलाप था। वह ऊपर से चल रहा है पर भीतर से अपने द्वारा वह किसी और को पति मानने के लिए राजी हैं क्या? किसी और से विवाह करने को राजी हैं क्या? न वे किसी और से विवाह करने को राजी हैं न किसी और को पति मानने को राजी हैं। अब मण्डप के नीचे बैट गईं। तो जो औरों के करने की बात थी, उसे तो वे रोक नहीं सकती थीं। जब उनके करने की बात आई तो उनसे कहा कि बाई साहब, अपना हाथ निकालो। वधू का हाथ वर के हाथ पर रखा जाता है न। अब मीरा जी हाथ नहीं निकालतीं या वे मानने को राजी नहीं हैं। उनके साथ बल का प्रयोग तो कोई कर नहीं सकता था कि बाई साहब का हाथ कोई खींच ले। बाई साहब हाथ निकालती नहीं। तो पुरोहित जी, जो विवाह संस्कार करा रहे थे, वे बहुत संकट में। अब तो पुरोहित जी के मुँह से निकल गया कि बाई साहब के हाथ में कष्ट है। मीरा जी को इतनी गहरी व्याकुलता है कि श्रीकृष्ण का हाथ किसी और के हाथ में जा नहीं सकता। अब यहाँ से प्रेम उदय होता है। मेरा कुछ नहीं है, इससे क्या सिद्ध हुआ कि हाथ मेरा नहीं, पर मेरे प्रिय का है। यह हाथ मेरे प्रिय का है। प्रिय के हाथ को, पति के हाथ को किसी और के हाथ में दे ही नहीं सकती। सुनते हैं कि मीरा जी के हाथ में बहुत बड़ा छाला पड़ गया, उसी समय। अब आप देखिए। यहाँ एक गहरा विज्ञान है। वह विज्ञान क्या है कि जितनी शक्ति प्रकृति में है उतनी सारी शक्ति मनुष्य के मन में है।

प्रवचन 8

मेरे निजस्वरूप उपस्थित महानुभाव, भाई और बहन!

मानव मात्र साधक है। साधक वह है, जिसका कोई साध्य हो। साध्य उसे नहीं कहते, जिसकी प्राप्ति न हो। साध्य उसे ही कहते हैं, जिसकी प्राप्ति हो जाए। साध्य की प्राप्ति के लिए साधना की आवश्यकता होती है और साधना की अभिव्यक्ति के लिए सत्संग की आवश्यकता होती है। अतः मानव को सत्संग करना चाहिए। जो काम सत्संग के द्वारा हो सकता है, वह किसी और उपाय से नहीं हो सकता। जो जीवन का सत्य है, उसे अगर आप स्वीकार नहीं करेंगे तो साधना का उदय नहीं होगा। और जब तक जीवन में साधना उदय नहीं होती, तब तक उसका साधन और जीवन एक नहीं होता और साध्य की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए हर भाई को, हर बहन को, चाहे किसी मजहब के हों, चाहे किसी इज्म के हों, किसी वर्ग के हों, किसी देश के हों सत्संग करना चाहिए।

सत्संग क्या है? जाने हुए असत् का त्याग तथा जीवन के सत्य को स्वीकार करना। जाना हुआ असत् क्या है? जितने भाई-बहन यहाँ

बैठे हैं उन सबसे पूछा जाए कि जो मिला है जिस किसी को शरीर के रूप में, व्यक्ति के रूप में, वस्तु के रूप में, योग्यता के रूप में, सामर्थ्य के रूप में, क्या वह सदैव रहेगा? तो सब कहेंगे, नहीं रहेगा। तात्पर्य क्या निकला, कि मिला हुआ जो होता है, जो मिलता है, ऐसा सिद्धान्त है वह अलग होता है। और जो अलग होता है, वह अपना नहीं होता, वह अपने लिए नहीं होता। उसकी सेवा की जा सकती है, उसका सदुपयोग किया जा सकता है, लेकिन उसको अपना नहीं माना जा सकता, अपने लिए नहीं माना जा सकता।

आप कहेंगे कैसे? जब मिला हुआ अलग होता ही है, तो उसे अपना मानने से लाभ क्या? मिले हुए को अपना मानने का परिणाम यही होता है, कि मिला हुआ तो रहता नहीं, ममता रह जाती है, उसकी कामना रह जाती है। तो वस्तु चली गई और ममता बनी रही, व्यक्ति चला गया और ममता बनी रही, तो उससे कोई लाभ नहीं होगा, हानि बहुत बड़ी होती है।

वस्तुओं की ममता से लोभ की उत्पत्ति हो जाती है, व्यक्तियों की ममता से कामना की उत्पत्ति हो जाती है और मोह की उत्पत्ति हो जाती है। तो अनेक विकारों की उत्पत्ति होती है मिले हुए को अपना मानने से, कोई लाभ नहीं होता। इसलिए मिले हुए शरीर को, मिली हुई योग्यता को, मिली हुई सामर्थ्य को अपना नहीं मानना चाहिए। अपने लिए नहीं मानना चाहिए।

अगर यह बात आपको जँच जाए, रुच जाए, पसन्द आ जाए कि हमें जो कुछ मिला है, वह हमारा नहीं है, हमारे लिए नहीं है, तो आप बड़ी सुगमतापूर्वक, बड़ी सुगमतापूर्वक निर्विकारता को प्राप्त कर सकते हैं। यानि निर्मोहता को प्राप्त कर सकते हैं, निर्लोभता को प्राप्त कर

सकते हैं, निष्कामता को प्राप्त कर सकते हैं, निर्भयता को प्राप्त कर सकते हैं, समता को प्राप्त कर सकते हैं। सभी दिव्य गुण आपको प्राप्त हो सकते हैं। लेकिन कब? जब आप इस सत्य को स्वीकारें कि जो मिला हुआ है, वह अपना नहीं है, अपने लिए नहीं है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि उसका सदुपयोग नहीं करना है या उसकी सेवा नहीं करनी है। मिले हुए व्यक्तियों की सेवा करना है और मिली हुई वस्तुओं का, योग्यता का सदुपयोग करना है। मिली हुई वस्तु, योग्यता का सदुपयोग तभी हो सकता है, जब हम उन्हें अपना न मानें, अपने लिए न मानें। जब मनुष्य किसी वस्तु को अपना मान लेता है, अपने लिए मान लेता है, तो उसका सदुपयोग नहीं कर पाता। और जब मिली हुई वस्तु का, योग्यता का, सामर्थ्य का सदुपयोग नहीं होता, जायज इस्तेमाल नहीं होता तब जीवन में अकर्त्तव्य आ जाता है, कर्त्तव्य नहीं रहता। कर्त्तव्य का मतलब ही इतना है कि जिस किसी को जो कुछ मिला है, उसका वह सदुपयोग करे, जायज इस्तेमाल करे।

तो मिले हुए का सदुपयोग करने से मिले हुए का सम्बन्ध भी टूट जाता है और मनुष्य करने के राग से भी मुक्त हो जाता है। मिले हुए का सम्बन्ध टूटने से मौजूद से सम्बन्ध हो जाता है और करने का राग निवृत्त होने से विश्राम प्राप्त हो जाता है। मैं यह निवेदन कर रहा था कि मिले हुए के सदुपयोग से उसका सम्बन्ध टूट जाता है और फिर करने के राग से हम मुक्त हो जाते हैं।

देखिए, करने से जो कुछ मिलता है, वह अपने काम नहीं आता। वह शरीर के काम आता है, परिवार के काम आता है, समाज के काम आता है, वह अपने काम नहीं आता। आप देखिए, बड़े-बड़े वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं, लेकिन क्या कभी आपने ऐसा कोई आविष्कार सुना,

जो आपको स्वाधीन बना दे। सुना कभी? नहीं सुना। तो मिला हुआ चाहे खेत से उपजाया हुआ अन्न हो या फैक्ट्री में बनी वस्तु हो, वह शरीर के काम आती है, अपने काम नहीं आती। हम शरीर की जरूरत को अपनी जरूरत मान कर अपने को पराधीन बना लेते हैं। लेकिन मिला हुआ सदैव तो रहता नहीं। इसलिए यह एक सीधी-सी बात है, जीवन का सत्य है। हमें इस बात पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए कि हमें जो कुछ मिला है, वह अपना नहीं है। तो किसका है? परिवार का है, समाज का है, संसार का है, अपना नहीं है। इसमें आप को कोई कठिनाई नहीं होगी। मिली हुई वस्तु को, मिली हुई योग्यता को परिवार के लिए मानें, समाज के लिए, संसार के लिए मानें। सब वस्तुओं के द्वारा परिवार, समाज और संसार की सेवा की जा सकती है। सेवा-सामग्री है, जो मिला है।

तो फिर अपने लिए क्या है—यह प्रश्न पैदा होता है अपने मन में। मिली हुई योग्यता भी अपने लिए नहीं है, मिली हुई सामर्थ्य भी अपने लिए नहीं, मिली हुई कोई भी वस्तु अपने लिए नहीं, तो फिर अपने लिए क्या है? तो अपने लिए जो है, वह अपने में ही है।

अब प्रश्न उठता है कि जो अपने लिए है और अपने में ही है, तो उसकी हमें प्राप्ति कैसे हो? उसकी प्राप्ति होगी तब, जब आप अपने को अपने में संतुष्ट करेंगे। अपने को अपने में सन्तुष्ट कैसे करेंगे? जब मिले हुए का सदुपयोग करेंगे तब। और मिले हुए का सदुपयोग कैसे करेंगे? जब उसे अपना नहीं मानेंगे, अपने लिए नहीं मानेंगे।

देखिए, जीवन का जो सत्य होता है, वह किसी मजहब की बात नहीं होती, किसी सम्प्रदाय की बात नहीं होती—वह सभी की अपनी बात होती है। आप कहें कैसे? आप विचार करके देखिए, अगर आप

मिले हुए को अपना मान लें, तो क्या आपका हो जाएगा, सदा आपके साथ बना रहेगा? क्या राय है? क्या आपका सदा उसके साथ बने रहेंगे? लेकिन उसे अपना मानकर मोह में आबद्ध हो जाएँगे कि नहीं? क्या राय है? तो हम मोह में आबद्ध हो जाएँ और शरीर हमसे छूट जाए तो कष्ट मिलेगा या आराम मिलेगा। ऐसे ही हम वस्तु के लोभ में आबद्ध हो जाएँ और वस्तु हमसे अलग हो जाए—इसमें कष्ट मिलेगा या आराम मिलेगा। अगर अपना न मानें, तो शरीर के सदुपयोग से क्या परिवार की सेवा नहीं हो सकती, संसार की सेवा नहीं हो सकती। तो मिले हुए शरीर को हम अपना मानें, यह बात सच्ची मालूम होती है या मिले हुए शरीर के द्वारा जिसकी चाहो सेवा करो यह ठीक मालूम होती है? क्या राय है? कौन-सी बात सच्ची मालूम होती है? कौन-सी बात आपको मालूम होती है कि ठीक है। आप अपने द्वारा सोचिए।

देखिए, मानव सेवा संघ की प्रणाली में जीवन का जो सत्य है, उसी को बताने का प्रयास किया जाता है, उसी की ओर संकेत किया है। आप यह जानते ही हैं कि मिले हुए शरीर के साथ हम सदैव नहीं रह सकते। तो शरीर के रहते हुए भी क्या हम शरीर के सम्बन्ध से, शरीर की आवश्यकता से फ्री (मुक्त) नहीं हो सकते? क्या राय है? आज एक भाई हमसे पूछने लगे स्वामी जी, हमको मुक्ति चाहिए—कैसे मिलेगी? मैंने कहा, मुक्ति तो तुम्हें तुम्हारे ही ज्ञान से मिलेगी।

तो मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि जो तुम्हारा अपना ज्ञान है, उसी से तुमको मुक्ति मिलेगी। मुक्ति का मतलब क्या है? शरीर के रहते हुए हम शरीर की जरूरत से फ्री हो जाएँ। जो शरीर की जरूरत से फ्री हो जाएगा, उसे किसी और की जरूरत अनुभव होगी क्या? क्या राय है? नहीं होगी। मैं बिना पढ़ा लिखा हूँ न आपसे

इसलिए पूछ लेता हूँ कि मेरी भाषा आप तक ठीक पहुँचती है या नहीं? शरीर की जरूरत से फ्री होना ही मुक्त होना है। और कोई मुक्ति होगी, हमको मालूम नहीं, लेकिन इस मुक्ति का अनुभव है जीवन में कि मनुष्य अगर चाहे तो वह शरीर की जरूरत से अपने को फ्री कर सकता है और शरीर रह सकता है, जब तक उसको रहना हो। और शरीर की जरूरत से अपने को फ्री न किया तथा उसकी जरूरत को अनुभव करता रहा तो क्या उस शरीर को सदैव रख सकता है? क्या राय है? कभी नहीं रख सकता।

अच्छा भाई, यह बात हमारे लिए है या सभी के लिए है। अच्छा यह तो बताओ भाई, कोई पढ़ा-लिखा रख लेगा या कोई बेपढ़ा रख लेगा। पैसे वाला शरीर को रख लेगा। बड़ा भारी कोई वैज्ञानिक रख लेगा। कोई नहीं रख सकता। यह यूनिवर्सल कानून है कि नहीं? यह आपके जीवन का सत्य है कि नहीं।

अब आप विचार करिये—हम चाहें, आप चाहें, कोई चाहे, पढ़ा लिखा हो, बेपढ़ा लिखा हो, धनी हो निर्धन हो, मजदूर हो, मिल-ओनर हो, मामूली चपरासी हो या प्राइम मिनिस्टर हो, लेकिन यह जीवन का सत्य सबके लिए समान है कि इसमें कोई फर्क है? सबके लिए समान है। सत्य कहते ही उसको हैं, जो सबके लिए समान हो।

तो हमारे-आपके सामने प्रश्न पैदा हुआ कि जिस शरीर के साथ सदैव नहीं रह सकते, जिस वस्तु के साथ सदैव नहीं रह सकते, जिस परिवार के साथ सदैव नहीं रह सकते, जिस समाज के साथ सदैव नहीं रह सकते, उस समाज को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाएँ। इस बात में कोई कठिनाई है क्या? अगर हम कहें कि आप पब्लिक की सेवा कीजिए, तो आप कह सकते हैं कि हमारे पास शक्ति नहीं है, योग्यता

नहीं है। कह सकते हैं कि नहीं? लेकिन अगर हम कहें कि कोई हानि न पहुँचाएँ, तो आपको कौन-सी योग्यता चाहिए भैया!

मैं किसी को हानि नहीं पहुँचाऊँगा—यह तो जीवन का सत्य है। क्यों? क्योंकि हम जानते हैं कि हमें कोई हानि न पहुँचाए।

देखिए, एक बार एक बड़े विद्वान महापुरुष की मुझसे भेंट हुई। वे मुझसे पूछने लगे कि बताओ शरणानन्द, अज्ञान किसे कहते हैं? मैं ठहरा बेपढ़ा आदमी। मैंने कहा आप ही बताइये। तो कहने लगे कि अज्ञान इसी को कहते हैं कि जो लोग यह मान लेते हैं कि भगवान व्यास में ज्यादा ज्ञान था और हममें कम ज्ञान है। बड़ी गम्भीर बात है। यह एक बड़े विद्वान महापुरुष ने कहा, जो वेदान्त के अद्वितीय पंडित थे—अच्युत मुनि उनका नाम था। फिर मैंने सोचा कि बात तो ठीक मालूम होती है। ज्ञान योग्यता का नाम नहीं है। योग्यता और चीज है और ज्ञान और चीज है। योग्यता एक प्रकार की इनर्जी है, एक प्रकार की शक्ति है और ज्ञान एक प्रकार का प्रकाश है। कौन-सा ज्ञान? जिस ज्ञान से आप यह अनुभव करते हैं कि कोई भी भाई, कोई भी बहन, कोई भी व्यक्ति कभी भी मुझको हानि न पहुँचाए। यह आपकी सीखी हुई बात है कि आप की जानी हुई बात है? बोलो, यह आपकी जानी हुई बात है या सीखी हुई बात है? जानी हुई बात है न?

किसी बड़े भारी विद्वान से पूछो कि धर्म क्या है? वह कहेगा "अहिंसा परमो धर्मः।" यही न कहेगा? यानि किसी को तकलीफ मत दो, किसी को हानि मत पहुँचाओ, किसी के विकास में रुकावट मत डालो, किसी की अवनति मत करो—यही न कहेगा। तो जो बात एक बड़े भारी विद्वान ने कही, आपके ज्ञान में है या नहीं। बोलो, अच्छा, आप जरा सोचिए कि आपका ज्ञान और वेदों का ज्ञान, आपका ज्ञान

और भगवद् वाणी का ज्ञान, आपका ज्ञान और सन्तों का ज्ञान एक है या अलग-अलग है? एक है। लेकिन अलग कहाँ होता है, जानते हो। अब इसी ज्ञान का किसी ने कर लिया आदर, तय कर लिया, निर्णय कर लिया कि मैं किसी को कभी हानि नहीं पहुँचाऊँगा, तो वह ज्ञान उसके काम आ गया कि नहीं? वह अहिंसक हो गया कि नहीं? वह सर्वप्रिय हो गया कि नहीं, वह सर्वहितकारी हो गया कि नहीं, वह सबके लिए आनन्ददायक हो गया कि नहीं? तो अन्तर कहाँ है? अन्तर हमारे-आपके ज्ञान में नहीं है। अन्तर है इस बात में कि एक आदमी—ज्ञान तो है पर उसका आदर नहीं करता और एक आदमी ज्ञान का आदर करता है। यानि ज्ञान से जो सत्य है, जो सत्य ज्ञान से प्रतीत होता है, अनुभव होता है, उस सत्य को स्वीकार करता है। तो स्वीकार करने या न करने में अन्तर है या ज्ञान में अन्तर है। ज्ञान में तो कोई अन्तर नहीं है न। अगर यह बात आपको मालूम हो जाए तो ज्ञान के लिए आपको हमारे पास आने की जरूरत पड़ेगी क्या? यह बात मत भूल जाइयेगा कि मैं ज्ञान के लिए कह रहा हूँ योग्यता के लिए नहीं कह रहा हूँ। योग्यता के लिए तो अगर आपको खाना पकाना है तो किसी बेपढ़ी-लिखी लड़की से सीखना ही पड़ेगा। योग्यता तो उसे कहा जाता है, जिससे आवश्यक कार्य को पूरा किया जाता है और ज्ञान उसे कहते हैं, जिससे वास्तविकता का अनुभव किया जाए। तो वास्तविकता का अनुभव कराने वाला ज्ञान तो सबमें समान रूप से है या नहीं है? है न? अच्छा एक बात बताओ भाई, आपके मान लेने से या जान लेने से आपकी जीवन की किसी समस्या का हल हुआ या नहीं? बोलो..... सत्संग ज्ञान से होता है, योग्यता से नहीं होता। आज हमसे यह ही

गलती होती है। हमने ऐसे-ऐसे लोग देखे हैं, पाँच, पाँच छह-छह वर्ष की बच्चियाँ देखी हैं, जिनको पूरी गीता याद है। क्या गीता का प्रभाव है उनके जीवन में? बोलो..... नहीं है।

मैं यह निवेदन कर रहा था कि मानव सेवा संघ का जो सत्संग है, उसमें सिखाया नहीं जाता, कोई नई बात नहीं बताई जाती। आपके जीवन का सत्य आपके सामने रख दिया जाता है। यदि सत्य को आप स्वीकार नहीं करेंगे तो मैं आपसे पूछता हूँ —"मैं किसी को हानि नहीं पहुँचाऊँगा' इसे माने बिना आप धर्मात्मा हो सकते हैं क्या? खूब धर्मग्रन्थों का पाठ करो, खूब माला फेरो, खूब ध्यान करो। मैं किसी का विरोध नहीं कर रहा हूँ, मैं सबको ठीक मान रहा हूँ। लेकिन मैं पूछता हूँ कि अगर सत्य का आदर न करें तो धर्मात्मा हो सकते हैं? अच्छा जब तक धर्मात्मा नहीं होते तब तक जगत् के काम आते हैं क्या? बोलो, क्या राय है? धर्मात्मा जब तक न हो, तब तक वह संसार के काम आ सकता है क्या? नहीं आ सकता है न। ठीक है कि नहीं?

धर्म माने संसार के काम आओ। और संसार के काम कैसे आओगे? इस सत्य को स्वीकार करो कि किसी को हानि नहीं पहुँचाऊँगा। न मन से, न वाणी से और न कर्म से कभी किसी को हानि नहीं पहुँचाऊँगा। यह सबसे पहली बात है कि नहीं? यह सबसे अधिक आवश्यक है कि नहीं? किसी पुरुष से पूछो कि तुम्हें धर्मात्मा पत्नी चाहिए या धर्मरहित पत्नी चाहिए। क्या कहेगा कि धर्मात्मा चाहिए। अच्छा, धर्मात्मा कब होगी, जब हानि न पहुँचाए।

देखिए, देखिए एक और विचार करके देखो भाई। बुरा मत मानना, मैं बेपढ़ा-लिखा हूँ आप पढ़े लिखे हैं। यह बम्बई शहर है। आप लोग इतने पढ़े हैं कि मुझे बीस बरस पढ़ाएँगे। मैं आपसे निवेदन

करता हूँ। लोग कहते हैं कि हमें तो धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र चाहिए। धर्म शब्द से लोग डरते हैं। धर्म से डरते हैं कि मजहब से। बोलो, धर्म और मजहब एक नहीं है। धर्म तो उसे कहते हैं जो निषेधात्मक हो। और जो विध्यात्मक प्रवृत्तियाँ हैं वे मत, मजहब और सम्प्रदाय कहलाते हैं। जो निषेधात्मक सत्य है, वह धर्म कहलाता है। जैसे, मैं किसी को हानि नहीं पहुँचाऊँगा—यह तो धर्म हो गया और मैं किस-किस प्रकार से दूसरों को लाभ पहुँचाऊँगा यह मजहब हो गया। तो मजहब धर्म के बिना निर्जीव होगा कि सजीव होगा?

जरा विचार करो। देखो, धर्म क्या है? इस्लाम मजहब आपने सुना है, हिन्दू इज्म, ईसाइयत् यह सुनी है न। अब आप देखो, मजहब और धर्म का भेद बताता हूँ; धर्म सब मजहबों में है। अच्छा बताओ किसी मुसलमान भाई से पूछो कि तुम्हें कोई तकलीफ पहुँचाए तो कैसा लगेगा? क्या कहेगा वह। अगर ईसाई से पूछो तो, हिन्दू से पूछो तो। जिसमें सब एकमत हों, वह धर्म कहलाता है और जिसमें भेद हो, वह मजहब कहलाता है। तो मजहब व्यक्तिगत सत्य होता है और धर्म यूनिवर्सल सत्य होता है। यानि धर्म जो है वह विश्वव्यापी सत्य है। अर्थ क्या हुआ कि धर्म सबमें एक है।

हम तो हिन्दू विद्वानों से सुनते हैं तो वे भी यह कहते हैं कि परमात्मा के सिवाय कुछ है ही नहीं। यह सुना है तुमने या नहीं। "सर्व खल्विदं ब्रह्म" और इस्लाम कहता है सिवाय खुदा के कुछ है ही नहीं। बोलो—क्या फर्क हुआ। तो झगड़ा धर्म में है कि इज्म में। इज्म में मजहब में झगड़ा होता है या धर्म में? एक छोटा-सा बच्चा है अपनी माँ को अपने ढंग से बुलाता है। कोई मम्मी कहता है, कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है, लेकिन माँ क्या समझती है? माँ समझती है या

कुछ और समझती है। क्या राय है—माँ समझती है। ऐसे ही किसी ने कह दिया कि सिवाय खुदा के कुछ नहीं, किसी ने कह दिया कि सिवाय परमात्मा के कुछ नहीं, किसी ने कह दिया सिवाय सत्य के कुछ नहीं। जीवन एक है। धर्म एक है। यह सबने कहा कि नहीं कहा? तो यह धर्म है। धर्म में भेद नहीं होता।

हमें तो कभी-कभी हँसी आती है। जब लोग कहते हैं कि हमें धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र चाहिए। सैकुलर स्टेट का मतलब यह है कि मजहब के नाम पर, अपने बाहरी रहन-सहन के कायदे कानून के आधार पर स्टेट मत बनाओ। यह मतलब है कि सचमुच मनुष्य के जीवन का जो सत्य है, उस सत्य को निकाल कर फेंक दोगे क्या?

तो मानव सेवा संघ ने कहा—हे मानव, मानवमात्र का धर्म भिन्न नहीं हो सकता। मानव मात्र का धर्म एक ही है।

अगर आप मानव हैं और मैं मानव हूँ। अगर कोई ईसाई, मुसलमान, पारसी, हिन्दू कोई भी हो। अगर वह इन्सान है तो इन्सानियत एक होगी या अलग-अलग होगी। तो जो एक होगा—सो धर्म होगा या जो अलग-अलग होगा, सो धर्म होगा। कोई कहेगा हम तो गाडेंगे तो गाड़ दो भाई, हम जलाएँगे तो जला दो, हम सुखाएँगे तो सुखा दो। इसमें फर्क हो सकता है कि शरीर हमसे आपसे अलग होगा—इसमें फर्क हो सकता है। शरीर हमसे अलग होगा ही। इस शरीर की गति-विधि करने में आप अलग-अलग ढंग से सोचेंगे। क्या राय है? यह मैं मिसाल दे रहा हूँ, समझाने के लिए। लेकिन शरीर से अलग होना जो है यह सबके लिए एक-सा है कि अलग-अलग है?

सत्य को स्वीकार किए बिना आप सत्य को प्राप्त कर पाएँगे क्या? कभी नहीं कर पाएँगे। इसीलिए महानुभाव, यह बात आपकी

सेवा में निवेदन की गई, कि आप मानव हैं और मानव होने के नाते यह स्वाधीनता आपको ही प्राप्त है। सारी सृष्टि में आप पता लगाइये जितनी भी योनियाँ है मानव को छोड़कर, सबको भोगयोनि के नाम से कहा गया है। तो भोगयोनि सत्संग कर सकती है क्या? और मानव मात्र सत्संग कर सकता है।

अच्छा, सत्संग करने के बाद आपके जीवन में साधना का उदय हो जाएगा कि नहीं हो जाएगा और साधना का उदय होने से साध्य मिल जाएगा कि नहीं मिल जाएगा? तो तात्पर्य क्या निकला? हम मानव हैं और मानव होने के नाते सत्संग कर सकते हैं। सत्संग करने से साधना का उदय होता है और साधना का उदय होने से साध्य की प्राप्ति होती है। तो इसका नाम सत्संग है, या किसी और को सत्संग कहोगे।

इससे क्या सिद्ध हुआ कि सत्संग मनुष्य का पुरुषार्थ है, परम पुरुषार्थ है। सत्संग मनुष्य की मानवता है। सत्संग इन्सान की इन्सानियत है। इन्सानियत कहो सत्संग कहो, मानवता कहो सत्संग कहो, स्वधर्म कहो सत्संग कहो। स्वधर्म सब का एक है या अलग-अलग है। और शरीर धर्म एक है क्या? एक हो सकता है क्या? नहीं हो सकता। तो स्वधर्म का नाम है सत्संग, सत्संग से होगी साधना और साधना से मिलेगा साध्य। और सत्संग करने में मानव मात्र स्वाधीन है।

क्या बताएँ, कई साधक हमसे एकान्त में बात करने आए। एक भाई आए। बड़ा परिश्रम करते हैं साधना के नाम पर लेकिन बेचारे को सन्तोष नहीं हुआ। तो हमसे पूछा-स्वामी जी, इतने वर्ष हो गए, बड़ी ईमानदारी के साथ हम अभ्यास करते हैं, पर हमको सन्तोष नहीं होता। हमने कहा, भैया एक बात तो सोचो, सन्तोष नहीं होता तो उस असंतोष

को सबल क्यों नहीं होने देते। वर्तमान स्थिति से जब गहरा असंतोष होता है, तो आगे बढ़ने की राह मिलती है। एक भाई ने कहा कि मैं मुक्ति चाहता हूँ। मुक्ति मिलने में कहाँ देर लगती है? अपने ज्ञान का आदर करो, अभी मुक्त हो जाओ। अपनी श्रद्धा का आदर करो अभी भक्त हो जाओ। अपने विश्वास के आदर से आप भक्त हो सकते हैं, अपने ज्ञान के आदर से आप मुक्त हो सकते हैं। तो मैं यह निवेदन कर रहा था आपसे कि चाहे हिन्दू हो, चाहे किसी मजहब का हो, किसी इज्म का हो, किसी वर्ग का हो, किसी परिस्थिति का मानव हो, लेकिन जीवन का सत्य सबका एक है। तो सत्य के नाते हम सब एक हैं कि नहीं? बुराई-रहित मजदूर को भी होना है, बुराई-रहित मिल-ओनर को भी होना है। बुराई-रहित सेठ को भी होना है और बुराई रहित सैक्रेट्री को भी होना है।

प्रवचन 9

मेरे निजस्वरूप उपस्थित महानुभाव, भाई और बहन!

कुछ लोग संसार को मानते हैं, उन्हें बुराई-रहित होना पड़ेगा। कुछ लोग अपने को मानते हैं, उन्हें अचाह होना पड़ेगा। कुछ लोग प्रभु को मानते हैं, उन्हें प्रेमी होना पड़ेगा। इन तीन में से कोई एक बात माननी पड़ेगी। बुराई-रहित होना सबके लिए अनिवार्य है। संसार को मानकर चलो, अपने को मानकर चलो, परमात्मा को मान कर चलो—बुराई करने का अधिकार किसी मानव को नहीं है। और अचाह होना भी जरूरी है क्योंकि अचाह हुए बिना बुराई-रहित नहीं हो सकते और प्रेमी भी नहीं हो सकते।

भौतिकवाद और अध्यात्मवाद यह तो एक जीवन का विज्ञान है और एक दर्शन है। जीवन का विज्ञान हमें बुराई-रहित होने की प्रेरणा देता है और जीवन का दर्शन हमें अचाह होने की प्रेरणा देता है। अगर हम बुराई करेंगे, तो वह बुराई हमारे साथ हो जाएगी, हमारे प्रति होने लगेगी। इसलिए जो संसार से लेना चाहो, वह संसार को दो। अगर संसार से भलाई लेना हो, तो भलाई करो। इसी को धर्म कहते हैं। यह

जीवन का विज्ञान है। और यदि संसार से कुछ नहीं लेना है, तो अचाह हो जाओ। बुराई करो मत और अचाह हो जाओ। तो संसार से तुम्हारा सम्बन्ध टूट जाएगा।

यदि इससे भी काम न चले तो प्रभु की शरणागति ले लो। हम जान लें कि प्रभु कब मिलेंगे, यह गलत बात है। प्रभु जाने नहीं जाते, प्रभु माने जाते हैं। तो प्रभु को मानना अगर आपको पसन्द है, तो मान लो। पहले तो यही मान लो कि हैं। इसी को आस्था कहते हैं। फिर मान लो कि अभी हैं। पहले भी थे, अभी भी हैं और आगे भी रहेंगे, सदैव रहेंगे। प्रभु कहते ही उसे हैं, जो सदैव हो। तो प्रभु हैं, अभी हैं, अपने में हैं और अपने हैं। अपने में होने से कहीं दूर नहीं हैं।

तो जो अपने में होता है, उसकी प्राप्ति के लिए यह बात मानी हुई न होकर अपनी हो जाए, सिद्ध हो जाए। तो जो चीज अपने में होती है, उसके लिए पराश्रय नहीं होता, परिश्रम नहीं होता। यानि, किसी और के द्वारा—शरीर के द्वारा या मन के द्वारा या बुद्धि के द्वारा या इन्द्रियों के द्वारा उसको प्राप्त नहीं किया जाएगा, क्योंकि अपने में है। शरीर के द्वारा, इन्द्रियों के द्वारा, मन के द्वारा, बुद्धि के द्वारा तो उसकी ओर दौड़ते हैं, जो अपने से अलग हो, जैसे संसार है। तो संसार की ओर चलते हैं, तो शरीर की जरूरत पड़ती है, इन्द्रियों की जरूरत पड़ती है, मन की जरूरत पड़ती है, बुद्धि की जरूरत पड़ती है और वह है अपने में।

अब इस शरीर, मन, इन्द्रियाँ और बुद्धि का क्या उपयोग होगा? यहाँ एक बात बड़े महत्त्व की मालूम होती है। शरीर के द्वारा जब हम बुराई नहीं करते हैं, बुराई करना छोड़ देते हैं, तब हम बुरे नहीं रहते, भले हो जाते हैं। और जब भलाई करते हैं, तब हम संसार के काम आते हैं।

लेकिन उस भलाई के बदले में यदि हमें कुछ चाहिए, तो हम पराधीन हो जाते हैं। बुराई न करें, तो भले हो जाएँ, भलाई करें तो संसार के काम आ जाएँ। संसार को भलाई चाहिए, संसार को बुराई तो चाहिए नहीं। तो भलाई करने का मतलब होता है संसार के काम आना। बुराई छोड़ने का मतलब होता है भला होना। तो इसका मतलब यह हुआ कि बुराई करते हुए तो हम भले हो नहीं सकते और जब भले नहीं हो सकते, तो भलाई कर ही नहीं सकते। पहली बात है बुराई-रहित होना, जिससे कि हम संसार के काम आएँ। लेकिन संसार के काम आए और उसके बदले में कुछ चाहा तो फिर हम पराधीन हो जाएँगे।

संसार हमें स्वाधीनता नहीं दे सकता। इसलिए भलाई के बदले में कुछ मत चाहो। जब स्वाधीन होकर आप अपने में सन्तुष्ट हो जाएँगे तब परमात्मा आपको मिल जाएगा, क्योंकि परमात्मा अपने में है। सभी में है, सर्वत्र है लेकिन मिलने के लिए अपने में है।

इस दृष्टि से संसार से मुक्त होकर हम अपने में सन्तुष्ट हो जाएँ तो परमात्मा मिल जाता है। जिन्हें पहले मिलना हो, पीछे मानना हो, उनके लिए तो एक यह तरीका है। और जिनको पहले मानना हो वे क्या करें? तो वे यह भी मान लें कि सब परमात्मा का है। परमात्मा को अपना मानने के लिए यह मानना पड़ेगा कि संसार जो है, यह परमात्मा का है। सब कुछ प्रभु का है, मेरा नहीं है, किसी और का नहीं है, तो परमात्मा से सम्बन्ध जुड़ जाता है।

हमसे गलती क्या होती है, कि मन को तो अपना मानते हैं और परमात्मा में लगाना चाहते हैं। तो फिर मन परमात्मा में नहीं लग सकता, या संसार में कुछ अपना मानते हैं और परमात्मा को पाना चाहते हैं, तो

नहीं पा सकते। यह सब परमात्मा का है, यह तब मान सकते हैं कि परमात्मा मेरा है। मेरा भी परमात्मा है, संसार का मालिक भी परमात्मा है। तो मेरा परमात्मा है, यह प्रेम के लिए होता है, प्रेमी होने के लिए होता है। मैं परमात्मा का हूँ, यह अभय होने के लिए होता है। अगर तुम भयभीत हो, चिन्तित हो, दुखी हो, परेशान हो, तुम्हें कुछ असंतोष है जीवन में, तो परमात्मा के होकर रहो। तुम्हारा भय दूर हो जाएगा, दुःख दूर हो जाएगा, चिन्ता दूर हो जाएगी, अशान्ति मिट जाएगी—केवल यह बात मानने से, कि मैं परमात्मा का हूँ और यह सब परमात्मा का है। अगर आपने यह नहीं माना, कि सब परमात्मा का है, तो मैं परमात्मा का हूँ—यह बात ठहरेगी नहीं, जमेगी नहीं, जीवन में नहीं आएगी। तो जो कुछ है, सब परमात्मा का है और मैं भी परमात्मा का हूँ। तो मेरा तो कुछ नहीं हुआ न? मेरा कुछ नहीं हुआ, तो संसार की कामना तो वैसे ही चली गई। मेरा कुछ है नहीं और मैं परमात्मा का हो गया तो मुझे चाहिए क्या? तो मैं अचाह भी हो जाऊँगा। परमात्मा का होने का मतलब है अचाह होना, क्योंकि मैं परमात्मा का हूँ। फिर परमात्मा की महिमा का दर्शन होगा आपको। जब तक परमात्मा के हो नहीं जाएँगे, और सब कुछ परमात्मा का नहीं मानेंगे, तब तक परमात्मा की महिमा का बोध नहीं होता, दर्शन नहीं होता, अनुभव नहीं होता। जब तक परमात्मा की महिमा का अनुभव नहीं होता तब तक परमात्मा में प्रेम भी नहीं होता। ऐसी बात है। इसलिए चाहे निराश होकर चाहे जानबूझकर कि संसार में मेरा कुछ नहीं है, संसार किसी व्यक्ति का नहीं है। देवकी जी कह रही थीं न, कि मैंने अपने को तो बनाया नहीं है। संसार को भी किसी व्यक्ति ने नहीं बनाया। जब कोई चीज दिखाई देती है, तो उसका कोई मालिक होता है। तो यह संसार बेमालिक का है क्या? किसी की

मिल्कियत को तो पसन्द करो और मालिक को नापसन्द करो तो चोर, बेईमान कहलाओगे कि नहीं कहलाओगे? जी। चोर किसको कहते हैं, बेईमान किसको कहते हैं? जो दूसरे की चीज को अपना माने, पसन्द कर ले। पसन्द करना ही अपना मानना होता है। यह नहीं कि आपको कोई चीज मिल जाएगी तब उसे आप अपना मानेंगे। इसीलिए पसन्द करने से ही कामना पैदा होती है। तो संसार मेरा नहीं है, मेरा हो भी नहीं सकता। मैं चाहूँ कि संसार बना रहे तो नहीं रख सकता वस्तु बनी रही तो नहीं रख सकता। तो संसार मेरा नहीं है, इसलिए मुझे ईमानदारी के साथ अचाह होना चाहिए। संसार से मुझे कुछ नहीं चाहिए क्योंकि संसार मेरा नहीं है, परमात्मा का है। तो संसार में और परमात्मा में इतना अन्तर है कि अगर संसार को अपना मानोगे, तो मिलेगा नहीं और बेईमानों की सूची में नाम लिख जाएगा, पराधीन हो जाएँगे हम, बेईमान हो जाएँगे। और अगर परमात्मा के होकर रहोगे तो संसार भी आपको अपना मान लेगा। देखिए, दो बातें होती हैं। एक तो संसार हमको अपना माने, और एक हम संसार को अपना मानें। तो अगर हम संसार को अपना मानेंगे, तब तो यह बेईमानों में नाम आ जाएगा और हो नहीं सकेगा क्योंकि संसार हमारा है नहीं। और संसार को हम अपना नहीं मानेंगे और परमात्मा के होकर रहेंगे, कि भई, हम तो प्रभु के होकर रहेंगे, तो संसार प्रभु का है न? प्रभु के होने के नाते से संसार भी तुम्हें पसन्द करेगा और तुम अभय हो जाओगे। भय नहीं रहेगा, तुमको कोई चिन्ता नहीं रहेगी, कोई दुःख नहीं रहेगा क्योंकि परमात्मा के हो गए न। परमात्मा तो पूर्ण है सब प्रकार से महान् है। मैं परमात्मा का हूँ, यह संसार परमात्मा का है, यह बात अगर तुम मान लो—यह मानने की बात है, जानने की बात नहीं है, समझने की बात नहीं है, करने की बात

नहीं है, यह मानने की बात है। मैं परमात्मा का हूँ, मैं परमात्मा का हूँ, यह संसार परमात्मा का है, यह सब कुछ परमात्मा का है, मैं परमात्मा का हूँ। ऐसा मानने से तुम्हें और कुछ करना नहीं रहेगा। संसार परमात्मा का हो गया न। अगर तुमने मान लिया कि मेरा हाथ है। तुम्हारे ऊपर कानून लगेगा कि यह काम करो। और मेरा तो है नहीं, परमात्मा का है, मैं परमात्मा का हूँ, संसार में मेरा कुछ नहीं है। मेरा कुछ नहीं है अर्थात् निर्मम होने से तुम्हारे ऊपर संसार का कोई टैक्स नहीं रहेगा। जिसके पास कुछ नहीं, उस पर कोई टैक्स होता है क्या? मेरा कुछ नहीं है यह ईमानदारी से मान लो—उसका फल होगा 'मुझे कुछ नहीं चाहिए'। तो अचाह होना और निर्मम होना। और मैं प्रभु का हूँ, मैं प्रभु का हूँ। तो ऐसा अनुभव हुआ है लोगों को, भक्तों को कि जिन्होंने इस सत्य को मान लिया कि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, मैं प्रभु का हूँ तो प्रभु ने उन्हें अपना योग दिया है, बोध दिया है और प्रेम दिया, और संसार ने उसको पसन्द किया है। संसार को वह बुरा नहीं लगा, जिसने यह मान लिया कि संसार में मेरा कुछ नहीं है, मुझे संसार से कुछ नहीं चाहिए। संसार भगवान का है, मैं भी भगवान का हूँ। बताओ, सूर्य किसके हुक्म से समय पर निकलता है हवा किसके हुक्म से काम करती है, आकाश किसके हुक्म से काम करता है। आखिर किसी कानून से चल रहा है न? मनमानी तो कर नहीं रहा कोई। तो यह सारी शक्ति जो है—संसार की शक्ति, संसार की रचना यह परमात्मा के होने से ही तो काम कर रही है न? परमात्मा के हुक्म से ही तो चल रहा है न? संसार जब यह देखता है, कि जो कोई आदमी संसार में अपनी ममता करता है, संसार की कामना करता है,

उससे संसार अप्रसन्न हो जाता है, खुश नहीं होता, उसके पीछे नहीं दौड़ता। लेकिन जो यह पसन्द कर लेता है कि सब मालिक का है, यह भी मालिक का है, मैं भी मालिक का हूँ, उसे सारा संसार अपना मान लेता है। आज क्या कारण है कि लोग हमको अपना नहीं मानते? इसलिए कुछ हम अपना मानते हैं, कुछ चाहते हैं। जो कुछ नहीं चाहता, जिसके पास कुछ नहीं है, अकिंचन है और अचाह है। जो अकिंचन और अचाह है, उसे संसार पसन्द करता है। और जो अकिंचन होता है और जो अचाह होता है, वह प्रभु का होकर रहता है। क्योंकि उसका तो कोई और है नहीं, कुछ है नहीं। मैं प्रभु का हूँ, मैं प्रभु का हूँ, यह बात अगर तुम ऐसे ही मान लो जैसे कि कोई तुमसे पूछे कि तुम्हारे बाप का क्या नाम है? फलाँ नाम है, हालाँकि वह बात सच्ची भी हो सकती है और झूठी भी हो सकती है। झूठी कैसे हो सकती है—इस सम्बन्ध में एक घटना सुनाएँ आपको—एब बार एक सज्जन से हम बात कर रहे थे अलीगढ़ में, पढ़े-लिखे आदमी थे और साइन्टिस्ट थे वे। बात करते-करते, कहने लगे कि मेरा लड़का इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में पढ़ता है। वे साइंस की बातें जानते थे, बहुत अच्छे योग्य आदमी थे। यह मुझे अब याद नहीं है, कि बी०एस-सी० थे या एम०एस-सी० थे और एल०एल०बी० थे वकालत भी करते थे एक मुंसिफ के घर पर हम ठहरे थे, वहीं बात-चीत हो रही थी। जब उन्होंने कहा कि मेरा लड़का इलाहाबाद में पढ़ता है, तो मैंने कहा कि लड़का कितने बरस का है? उसने कहा बीस बरस का है। मैंने कहा कि वकील साहब, इतना सफेद झूठ बोलने वाला हमने आप जैसा कोई नहीं देखा। इतना कहना था कि वे तो एकदम कहने लगे कि क्या कह रहे हैं स्वामी जी? मैंने कहा कि

आप मुंसिफ के सामने इतना सफेद झूठ बोलते हो। उन्होंने कहा मैं सत्य बोलता हूँ और आप कहते हैं, कि सफेद झूठ बोलता हूँ। तब मैंने कहा कि भाई, अभी तुमने यह कहा था, कि शरीर के सारे परमाणु सात बरस में बदल जाते हैं, और वह लड़का बीस बरस का है। तो बीस बरस पहले जिस शरीर से लड़का पैदा हुआ था वह बाप दो बार मर गया और तू कहता है लड़का मेरा है। और लड़का भी तीन बार बदल गया। तो ईमानदारी से देखा जाए तो मनुष्य ईमानदारी से यह नहीं कह सकता, कि यह मेरी है। कह नहीं सकता। और जब यह मान लेता कि मेरा कुछ नहीं है, उसके बाद उसके लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह यह सोचे कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। अकिंचन अगर हो गया कोई और अचाह नहीं हुआ तो बड़ी दुर्दशा होती है। मेरा कुछ नहीं है, अब तक तो कुछ हुआ नहीं अब क्या चाहूँगा। यह तो आप देखिए न? अगर मेरा कुछ होता और मेरे चाहने से कुछ होता तो जाने आप क्या-क्या चाहते?

तो मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, मैं प्रभु का हूँ। मैं जो हूँ वह संसार का हूँ नहीं क्योंकि संसार में मेरा कुछ है नहीं। संसार की और मेरी जातीय भिन्नता है बिल्कुल। देखिए, शरीर बदलता रहता है, मैं कभी नहीं बदला। आंप विचार करके देखो, किसी भाई को, किसी बहन को यह अनुभव नहीं होता कि जो मैं पहले था वह अब नहीं हूँ। सब कहते हैं, मैं तो वही हूँ। मेरा शरीर वैसा नहीं है, मेरी परिस्थिति वैसी नहीं है, मेरी सम्पत्ति वैसी नहीं है। तो संसार बदलने वाला, मैं न बदलने वाला, संसार अपने को अपने आप न जानने वाला, मैं अपने आपको महसूस करने वाला कि मैं हूँ। तो न बदलने वाला परमात्मा भी

है। अविनाशी परमात्मा भी है और न बदलने वाला मैं भी हूँ। तो मैं परमात्मा की जाति का हूँ। ऐसा मानकर कि मैं परमात्मा की जाति का हूँ, अर्थात् मैं परमात्मा का हूँ, ऐसा अगर आप मान लेते हैं तो आपको संसार पसन्द कर लेता है। अगर आप यह मान लेते हैं कि मैं परमात्मा का हूँ, संसार में मेरा कुछ नहीं है और मुझे संसार से कुछ नहीं चाहिए।

तो इन तीन बातों से ही संसार आपको पसन्द कर लेगा। और जब संसार आपको पसन्द कर लेगा तो यह जो शरीर आपके पास है, उसकी प्रत्येक जरूरत को संसार अपनी जरूरत मान लेगा। अब संसार शरीर को अमर तो कर नहीं सकता क्योंकि संसार स्वयं अमर नहीं है। अगर शरीर की जरूरत को संसार अपनी मान लेगा, तब आपको पराधीनता का अनुभव होगा क्या? बोलो। तब कुछ कठिनाई मालूम होगी क्या? और आप संसार को पसन्द करें और संसार आपको पसन्द न करे तो? हम कहें किसी मोटर वाले से कि तुम हमको 25 तारीख की रात को मोटर भेज देना। मोटर वाला हमको पसन्द न करे तो हमको तकलीफ होगी या आराम मिलेगा? लेकिन अगर मोटर वाला पसन्द करे तो हमको तकलीफ होगी या आराम मिलेगा। आराम मिलेगा। इसी तरह से बहुत दृढ़ता के साथ मैंने इस बात पर जोर दिया कि परमात्मा के हो जाओ। परमात्मा का होने के लिए मैं यह आपको बता रहा हूँ कि इस बात को तो मान ही लो कि संसार में मेरा कुछ नहीं है, जान लो इस बात को और संसार से मुझे कुछ नहीं चाहिए। तब आपमें यह सामर्थ्य हो सकता है कि आप यह कह सकें कि मैं प्रभु का हूँ। जब आप यह कहेंगे कि मैं प्रभु का हूँ और शरीर मेरा नहीं है, मन मेरा नहीं है, प्राण मेरे नहीं हैं, कोई वस्तु मेरी नहीं है तो यह

संसार उसको अपना मान लेगा। शरीर का तथा संसार का है अविभाज्य सम्बन्ध। और परमात्मा तुमको अपना जानता ही है। परमात्मा तो इस बात को जानता ही है कि तुम उसके हो। और तुमने यदि मान लिया कि मैं परमात्मा का हूँ तो परमात्मा की जो कृपा-शक्ति है वह परमात्मा का प्रेम प्रदान करेगी, परमात्मा का योग प्रदान करेगी, परमात्मा का बोध प्रदान करेगी। परमात्मा की कृपा-शक्ति सब कुछ करेगी और संसार शरीर की जरूरत को पूरा करने में हर्ष अनुभव करेगा। तो जीवन कैसा हो जाएगा? पूर्ण आनन्दमय हो जाएगा।

प्रवचन 10

मेरे निजस्वरूप महानुभाव भाई और बहन !

संसार से कोई चीज—न शरीर अलग किया जा सकता है न परिवार अलग किया जा सकता है। लेकिन एक बात की जा सकती है, कि जब तुम शरीर से काम करोगे समाज का, तब उसके बदले में परिवार का पोषण होगा और शरीर का पोषण होगा। जब शरीर से समाज का काम करोगे तो उसके बदले में जो मिलेगा, उससे परिवार का और शरीर का पोषण होगा। अब एक बात तो सोचो, कि समाज को हानि पहुँचा करके परिवार का पोषण करोगे या शरीर का पोषण करोगे, तो वह अकर्त्तव्य कहलाएगा। समझ में आई बात? समाज को हानि पहुँचा करके, दूसरों को हानि पहुँचा कर के यदि अपने लाभ की बात सोचोगे, जैसे किसी ने चोरी कर ली, किसी ने जेब काट ली, सामान उठा लिया—समाज को हानि पहुँचा करके अपने शरीर को और परिवार को सुख देना चाहा, उसको ऐसा नहीं करना चाहिए। इसको अकर्त्तव्य कहते हैं, अधर्म कहते हैं। यह करने योग्य बात नहीं है। लेकिन समाज को हानि बिना पहुँचाए अगर आपने परिवार की और शरीर की सेवा की तो यह धर्म कहलाएगा।

लेकिन, आज की दशा क्या है? अब देखिए, पश्चिमी पाकिस्तानी सरकार ने पूर्वी बंगाल को हानि पहुँचाई, या नहीं? और हानि पहुँचा करके चाहते हैं कि हमारी स्टेट बनी रहे, तो इसका परिणाम क्या होगा? स्टेट रहेगी नहीं। अभी जाए, कभी जाए, किसी समय जाए, जाएगी अवश्य। क्यों? अगर पूर्वी बंगाल को हानि न पहुँचाते तो जैसा इलैक्शन हुआ था और 98% वोट आया था मुजीबुर्रहमान का तो कहते भाई, बंगाल की सरकार तुम बना लो। बना लेने देते, फिर समझौता करते, तो कभी भी पाकिस्तान और बंगाल में विभाजन हो पाता क्या? जी, नहीं हो पाता। तो क्या बंगाल और पाकिस्तान एक रह पाएगा? हम तो सुनते हैं यहाँ तक कि बंगाल के आदमी, जो हिन्दुस्तान में बंगाल से आए हैं, एक करोड़ लगभग उनकी संख्या सुनते हैं। उनके न होने से हिन्दुस्तान से भी लड़ना चाहता है। सुना है हमने, ठीक तो हमको मालूम नहीं है। सुनी हुई बात है कि मिलिट्री में जो ट्रेनिंग में थे उनकी ट्रेनिंग को कम कर दिया है। उन्हें भेजा है कि जाओ, तुम लड़ाई का काम सीख लो, फील्ड का काम सीख लो। अब देहरादून से लोग देवलाली में आ गए सीखने के लिए। इससे पता चलता है कि पाकिस्तान तैयारी कर रहा है हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने की। अब मान लो पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की लड़ाई हो जाए तो इसमें क्या तुम समझते हो कि पाकिस्तान हिन्दुस्तान पर विजयी हो जाएगा? जी, नहीं हो जाएगा। लेकिन हिन्दुस्तान का भी नुकसान होगा या नहीं? होगा। तो हिन्दुस्तान विजयी होकर भी हानि उठाएगा। पाकिस्तान पराजित होकर भी बर्बाद हो जाएगा।

यदि अब की बार पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की लड़ाई हुई तो क्या जमीन फिर वापिस कर दी जाएगी? तो पाकिस्तान ने अपने मिटाने

का उपाय कर लिया। क्यों? उसने पूर्वी बंगाल को नुकसान पहुँचाया, यों। और मान लो अगर पूर्वी बंगाल ने कहा कि पाकिस्तान से अलग होना चाहते हैं तो आजकल तो कानून बना दिया कि बहुमत जो कहे सो मानो। पाकिस्तान जो बना, पाकिस्तान कोई नया देश था क्या? यह मैं एक बात समझा रहा हूँ—यह मेरा विषय नहीं है। आपके बात समझ में आ रही है कि नहीं? मैं यह समझा रहा हूँ कि जब बहुत से मुसलमानों ने कह दिया कि हम हिन्दुओं के साथ नहीं रहना चाहते, तो पाकिस्तान बना। तो पाकिस्तान किस आधार पर बना? बहुमत के आधार पर बना या किसी और आधार पर बना? और बंगाल जो अलग होना चाहता था, वह बहुमत के आधार पर होना चाहता था कि किसी और आधार पर होना चाहता था। तो जिस आधार पर पाकिस्तान बना, उसी आधार पर बाँग देश बनाना चाहता था। आधार तो दोनों का एक ही रहा। तो यह बात झूठी थी न। कौन-सी बात झूठी थी? कि हिन्दू मुसलमान साथ नहीं रह सकते। अब तो यह साबित हो गया कि मुसलमान-मुसलमान भी साथ नहीं रह सकते। अब क्या करोगे? ऐसे ही कुछ दिन के बाद और लड़ाई हो जाए परिवार में और पति-पत्नी कहें, हम साथ नहीं रह सकते तो स्त्रियों की अलग गवर्नमैण्ट बनेगी क्या, पुरुषों की अलग बनेगी, लड़कों की अलग बनेगी? बोलो, क्या राय है? तो यह झूठी बात है न। तो जब बहुमत के सत्य को मान लिया था तो पाकिस्तान सरकार को बहुमत का आदर करना चाहिए था। क्या राय है? आपकी आजकल यही तो सत्य मान लिया है, कि बहुत से लोग जिस बात को कह दें, वह बात मान ली जाए चाहे झूठ हो। ऐसा मान लो कि सौ होवें बेवकूफ और निन्यानवें हों बुद्धिमान तो सौ बेवकूफ निन्यानवें बुद्धिमानों को हरा दें। यही नीति गलत है कि नहीं? लेकिन

गलत नीति से ही पाकिस्तान बना था। तो जिस नीति से पाकिस्तान बना था उसी नीति से तो बँगलादेश अलग होना चाहता था। तो उसको नहीं होने दिया और बल का प्रयोग किया। तो बल के प्रयोग से अब पाकिस्तान जिन्दा रह पाएगा? कभी नहीं जिन्दा रह सकता।

इसलिए देवकी जी ने यह बात कही कि भाई, देखो, शरीर से काम करना मत छोड़ो। काम करना छोड़ने से काम नहीं बनेगा, लेकिन एक बात का ध्यान रखो कि हम संसार का काम कर रहे हैं, अपना काम नहीं कर रहे हैं। बड़ी भारी गलती यह हो जाती है, कि आदमी जब व्यापार करने चलता है, नौकरी करने चलता है तो कहता है, मैं साहब, अपने लिए कर रहा हूँ। तो बेईमानी करने से चूकता नहीं। क्या राय है? अगर हम यह मान लें कि मैं अपना काम नहीं कर रहा, मैं तो संसार का काम कर रहा हूँ। क्योंकि संसार से शरीर तो अलग हो नहीं सकता। संसार का काम करके शरीर का और परिवार का पोषण कर रहा हूँ—यह तो हो जाए धर्म-मर्यादा, लेकिन आदमी मान लेता है कि मैं तो अपना काम कर रहा हूँ। तो मिल-ओनर मजदूरों की परवाह नहीं करता, मजदूर मिल-ओनर की परवाह नहीं करते। एक वर्ग दूसरे वर्ग की परवाह नहीं करता और आपस में संघर्ष होकर नुकसान होता रहता है।

इसलिए मानव-सेवा-संघ ने यह एक बड़ी सुन्दर बात बताई, कि हे मानव, तुम यह मानकर मत सोचो कि मैं अपना काम कर रहा हूँ, यह सोचो कि मैं संसार का काम कर रहा हूँ। यह तो पहली बात कही कि संसार का काम कर रहा हूँ। और संसार का मालिक परमात्मा है, अतः यह परमात्मा का काम हो गया। तो परमात्मा के काम में बेईमानी करना चाहिए क्या? आलस्य करना चाहिए क्या? अच्छा, अगर मान लो,

कल्पना करो थोड़ी देर के लिए। जैसा कि लोग कहते हैं आजकल कि मजदूरों ने ठीक काम किया और मिल ओनर ने बेईमानी की। थोड़ी देर के लिए मान लो ऐसा कहते हैं। हमें तो दोनों ही बातें सुनने को मिलती हैं। कहीं-कहीं मजदूरों की बेईमानी सुनने को मिलती है, कहीं-कहीं मिल-ओनर की बेईमानी सुनने को मिलती है। आजकल तो ऐसा युग हो गया है न, कि लेबर क्लास का जो लीडर है न, वह मजदूरों को बेईमान बनाता है। काम मत करो, बोनस माँगो, समझौते को तोड़ दो, तो नतीजा यह है कि अगर मिल-ओनर कोई बोनस आपको देगा, अगर काम कम हो जाएगा तो दे पाएगा ईमानदारी से? जी, तो आमदनी घटाते जाओ और बोनस माँगते जाओ, यह कौन-सी बहादुरी की बात है। ऐसे बेसमझ लीडर की बात माननी चाहिए क्या? जी, कभी नहीं माननी चाहिए। एक बात है कि माँगते रहो लेकिन काम मत छोड़ दो। तो काम कभी नहीं छोड़ना चाहिए। एक तो हड़ताल कभी नहीं करना चाहिए और एक काम अधिक से अधिक करना चाहिए। क्योंकि काम के बदले में ही तो मिलेगा बोनस। तरक्की अगर होगी तो काम के बदले में होगी कि काम छोड़ने में होगी। इसका मतलब यह नहीं है मैं मिल ओनर से कोई फीस लेता हूँ इसलिए कहता हूँ। मिल-ओनर को भी यह कहता हूँ कि मिल तभी चल सकेगा, जब मिल के हर आदमी की सेवा का ध्यान रखोगे। कल्पना करो, मिल में आमदनी बढ़े, उससे स्कूल खोल दिए जाएँ, मिल में काम करने वालों के बच्चों को पढ़ने को मिल जाए। अस्पताल खोल दिए जाएँ, उनको चिकित्सा मिल जाए। उन्हें कोई तकलीफ न रहे। मगर भैया, एक बात तो बताओ, क्या हर आदमी इंजीनियर बन जाएगा, तब मिल चल पाएगा क्या? कभी नहीं चल पाएगा। तो देखिए, कि जर्मन के और जापान के लोगों ने—वहाँ

के अफसरों ने भी, वहाँ के क्लर्कों ने भी, वहाँ के मजदूरों ने भी खूब काम किया, ईमानदारी से काम किया तो जर्मन और जापान इतना मालदार हो गया कि जापान का कर्जा तो अमेरिका पर हो गया। जो अमेरिका पाकिस्तान को, हिन्दुस्तान को कर्जा देता फिर रहा है, जापान का कर्जा अमेरिका पर, वह इतना मालदार हो गया। जापान की चीजें अमेरिका में जाकर बिकने लगीं, इतना काम हो गया। और जर्मन जो था, वह इतना मालदार हो गया कि उसका बर्बाद देश फिर आबाद हो गया और हिन्दुस्तान आजाद देश बर्बाद हो गया क्यों? सही काम नहीं किया यों। सही काम क्यों नहीं किया कि हम इस बात को भूल गए कि यह तो संसार का काम है, शरीर संसार के लिए मिला है और संसार का मालिक परमात्मा है।

अगर संसार हमारे साथ बेईमानी करेगा तो परमात्मा भी तो हमें देखेगा। तो भई, मालिक को भी तो देखने देते। तो परमात्मा को नहीं देखने दिया, अपने आप अपने हाथ में सब ले लिया। बजाए मिल ओनर के तुम बेईमानी करते हो, तुम तो नहीं कर पाओगे, हम करेंगे। तो तुम बेईमानी मत करो, हम बेईमानी करेंगे, इससे उन्नति नहीं होगी।

इसलिए देवकी जी ने बड़े सुन्दर शब्दों में कहा कि अगर तुम साधक होना चाहते हो, मानव होना चाहते हो, और शान्ति चाहते हो, तो मेरा कोई काम नहीं है संसार का काम है, ऐसा मानो। संसार का काम करो, अपना काम मत करो। अपना काम नहीं करोगे, तो लोभ नहीं उत्पन्न होगा और लाभ का लालच नहीं होगा, हानि का भय नहीं होगा। अब मैं एक बात आपको बता दूँ, बड़े ऊँचे दर्जे की बात है, और यह प्रकृति के विधान की बात है, संसार के विधान की बात है। अगर हमारे जीवन में लोभ न रहे, तो दरिद्रता नहीं रह सकती। इस बात को आज

भूल गए हैं लोग। यह जीवन का विज्ञान है कि निर्लोभता से दरिद्रता नाश होती है। ऐसे ही निर्मोहता से भय नाश होता है। ऐसे ही निष्कामना से अशान्ति नाश होती है। अशान्ति नाश होती है निष्कामता से, भय नाश होता है निर्मोहता से और दरिद्रता नाश होती है निर्लोभता से। अब निर्लोभता होने से दरिद्रता नाश होती है, यह प्रकृति का विधान है, ईश्वर का विधान है। यह मनुष्य का विधान नहीं है जो बदल जाएगा। इसलिए महानुभाव, अगर हम सचमुच निर्लोभ हो जाएँ, तो दरिद्र नहीं रह सकते, अगर निर्मोह हो जाएँ, तो भय नहीं रह सकता। और अगर निष्काम हो जाएँ तो अशान्ति नहीं रह सकती। परन्तु आज इस जीवन-विज्ञान पर हमारी दृष्टि ही नहीं जाती। हमें यह बताया ही नहीं जाता। आज हमारे पास चिट्ठियाँ आती हैं, लड़के लिखते हैं कि बिना सिफारिश के काम ही नहीं मिलता। ऐसे ही लोग कहते हैं कि बिना बेईमानी के काम ही नहीं चलता है। इतना ही नहीं, यहाँ तक कहते हैं, कि बेईमानी से लोग फलते-फूलते हैं। लेकिन यह कोई नहीं कहता आकर मुझसे, कि मैंने बेईमानी की और मैं फला-फूला —दूसरों के लिए ही कहते हैं। ये झूठी बातें फैल रही हैं। इन झूठी बातों को जीवन में से निकाल देना चाहिए।

अगर गरीबी मिटेगी, तो निर्लोभता से मिटेगी। और किसी प्रकार गरीबी नहीं मिटेगी। उत्पादन बढ़ेगा तो परिश्रम से बढ़ेगा। काम अच्छा होगा तो ईमानदारी से अच्छा होगा। तो सबमें ईमानदारी आनी चाहिए। मिल-ओनर में भी ईमानदारी आनी चाहिए, आफीसर में भी ईमानदारी आनी चाहिए। एक दफा टाटा एक जगह है न-टाटा नगर बहुत बड़ा कारखाना है टाटा जी का। तो वहाँ मजदूरों की तनख्वा बढ़ाने का प्रश्न हो रहा था। टाटा जी ने कहा कि, हम तो बढ़ाना चाहते हैं, और क्या बताएँ हमारे आफीसर लोग नहीं चाहते हैं ।

यह बड़े आदमी की कही हुई बात कहता हूँ। ऐसी-वैसी बाजारू बात नहीं कहता हूँ। तो मतलब क्या, कि आफीसर इस बात में बुद्धिमानी समझते हैं कि मिल-ओनर की आमदनी बढ़ जाए मजदूरों की भले ही कम हो जाए। यह भी बेवकूफी है। मजदूर भी सुखी रहे और मिल-ओनर भी सुखी रहे और वह स्वयं भी सुखी रहे। सभी सुखी रहें, इसी भाव से काम करना चाहिए। अगर आप मजदूर को दुखी रखेंगे तो आगे चलकर आप को दुखी होना पड़ेगा। और अगर आफीसर मिल-ओनर को ही सुखी बनाएँगे—तो देखो, एक बात बताऊँ आपसे, जो सुख के पीछे दौड़ेगा, उसे दुःख मजबूर होकर भोगना पड़ेगा। सुख के भोगी को दुःख भोगना पड़ेगा, क्योंकि सुख बाँटने के लिए आता है। अगर आप सुखी हैं, तो आप दूसरों की सेवा कीजिए। अगर आप दुखी हैं तो सुखियों से सुख छीनिए मत। आज आप उल्टी गंगा बहाना चाह रहे हैं कि दुखी होकर सुखियों का सुख छीनना चाहते हैं और सुखी होने पर दुखियों की सेवा नहीं करना चाहते हैं, मानव सेवा संघ ने कहा ये दोनों बातें गलत हैं। सुखी होने पर दुखियों की सेवा करो और दुखी होने पर त्याग को अपनाओ। दुखी के मन में भी गौरव होना चाहिए। देखिए एक बार हमारे उत्तर प्रदेश के चीफ जस्टिस नैनीताल के जंगलों में घूम रहे थे। उन्होंने झोंपड़ी में एक आदमी को देखा—बहुत प्रसन्न, बड़ा मस्त देखा, बड़ा खुश देखा। पूछने लगे वे जस्टिस साहब उस आदमी से, जिसकी झोंपड़ी थी, बढ़िया मकान नहीं था, बहुत सामान नहीं था—तुम इतने खुश कैसे रहते हो। वह बोला, काम करता हूँ खाता हूँ, मस्त रहता हूँ। तो चीफ जस्टिस ने कहा कि ऐसी खुशी मुझे कभी नहीं मिली। अभी एक आदमी मुझको सुना रहे थे कि दो आदमी

मजदूरी करने गए थे। वे दोनों आदमी बहुत खेल रहे थे, खुश हो रहे थे, विनोद कर रहे थे और मामूली-सी अपनी छोटी-सी झोंपड़ी थी, खाना पक रहा था और वे मस्त थे। उन्होंने पूछा, भैया क्या बात है? बात क्या है, तीन रुपये मुझको मिलते हैं, साढ़े तीन रुपये मेरी पत्नी को मिलते हैं। इतना रुपया कमाते हैं, खाते हैं और मौज करते हैं। अपना एक रुपया, डेढ़ रुपया खाते हैं और क्या? तो वे सेठ कहने लगे कि ऐसी खुशी हमने कभी नहीं देखी अपने जीवन में, कि हम अपनी स्त्री के साथ इतने हर्षपूर्वक बात कर सकते हों और खुले दिल से मिलकर रह सकते हों—यह प्रसन्नता हमको नहीं मिली।

तो दूसरों को तो हानि पहुँचाने की बात सोचते हो, अपने को लाभ लेने की बात सोचते हो। यह जो दुनिया में दुःख इतना बढ़ गया, वह क्यों बढ़ गया? केवल इस बात के लिए कि लोगों ने दूसरों के दुःख का ध्यान नहीं दिया। हमारा साथी दुखी न रहे—इस बात को लोग भूल गए। हम सुखी हो जाएँ, लोग चाहे दुखी हो जाएँ—इस बात को पसन्द कर लिया, उसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे सभी दुखी होते चले जा रहे हैं। आजकल कहते तो लोग यह हैं कि गरीबी मिटाओ, करते क्या हैं कि अमीरी मिटाओ। दुःख मिटाओ, सो नहीं कोई सोचता, सुख मिटाओ यानि जो सुखी हैं उन्हें भी दुखी बनाओ और दुखी तो बेचारे दुखी हैं ही।

तो मानव सेवा संघ ने यह बात बताई कि तुम संसार का काम मान कर करो और संसार को भगवान का मान कर करो। अगर प्रभु-विश्वासी हो, तो भगवान का मान कर करो अगर भौतिकवादी हो, तो संसार का मान कर करो। अपना कोई काम नहीं है। अपना काम क्या है? अपने को शान्ति चाहिए। काम के बदले में क्या मिलेगा?

वस्तु मिलेगी, पैसा मिलेगा, पद मिलेगा—यही तो मिलेगा, शान्ति तो मिलेगी नहीं। तो अपने को शान्ति चाहिए। आपको शान्ति चाहिए, तो सही काम तो करो लेकिन उसको अपना मान कर मत करो। तो लाभ का लोभ नहीं होगा, हानि का भय नहीं होगा, आलस्य नहीं होगा, अकर्मण्यता नहीं होगी। यदि आलस्य और अकर्मण्यता नहीं होगी, लाभ का लोभ और हानि का भय नहीं होगा तो मन शुद्ध होगा और फिर शान्त हो जाएगा। यही बात देवकी जी ने कही कि सही काम करने से ही शान्ति मिलती है।

और दूसरी बात उन्होंने यह कही—अध्यात्म-दृष्टि से—अध्यात्मवाद की दृष्टि से उन्होंने यह कहा कि अगर तुम शरीर से अपना नित्य सम्बन्ध नहीं मानोगे तो शरीर को अपना नहीं मानोगे, अपने को शरीर नहीं मानोगे यानि संसार से सम्बन्ध को तोड़ दोगे। मेरा कुछ नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए—इन दो बातों से सम्बन्ध जुड़ता है संसार से। जैसे यह हाथ मेरा है तो सम्बन्ध हो गया, मुझे अमुक वस्तु चाहिए तो संसार से सम्बन्ध हो गया। अगर अप्राप्त की कामना छोड़ देते हो, प्राप्त की ममता तोड़ देते हो तो ही तुमको शान्ति मिलेगी। प्राप्त की तो ममता तोड़ दो, अप्राप्त की कामना छोड़ दो तो शान्ति मिलेगी, जरूर शान्ति मिलेगी।

ऐसे ही तीसरी बात उन्होंने बताई कि भाई, अगर तुम परमात्मा को मानते हो—देखो, परमात्मा का मानना सबके लिए सम्भव नहीं होता। वैसे तो परमात्मा से कुछ फायदा होगा—इस बात के लिए तो चोर भी परमात्मा को मानता है, जेल काटने वाला भी परमात्मा को मानता है, बेईमानी करने वाला भी परमात्मा को मानता है कि कुछ लाभ हो जाए, कुछ लाभ हो जाए। यह परमात्मा को मानना नहीं कहलाता। परमात्मा का मानना कहलाता है कि परमात्मा हमें चाहिए परमात्मा से

हमें कुछ नहीं चाहिए। यह भाषा समझ में आती है? यानि परमात्मा हमारा साध्य है। परमात्मा चाहिए, परमात्मा से कुछ नहीं चाहिए। संसार का काम करना है, संसार से कुछ नहीं चाहिए। दो ही चीजें तो हैं माँगने के लिए—एक तरफ संसार, एक तरफ परमात्मा। तो परमात्मा से कुछ नहीं चाहिए, संसार से कुछ नहीं चाहिए।

लेकिन संसार का काम करेंगे और परमात्मा के प्रेमी रहेंगे। परमात्मा को अपना मानेंगे, और संसार का सही काम करेंगे, परमात्मा के नाते से करेंगे और प्राप्त की ममता तोड़ देंगे, अप्राप्त की कामना छोड़ देंगे—ये चार बातें हुईं—संसार का काम करेंगे, पर उसे अपना नहीं मानेंगे, प्राप्त की ममता तोड़ देंगे, अप्राप्त की कामना छोड़ देंगे, परमात्मा को अपना मानेंगे। तो परमात्मा को अपना मानने वाले कोई बिरले भक्त होते हैं। राम-राम कहो कुछ फायदा हो जाएगा, दान करो, कुछ फायदा हो जाएगा। तो हमने बेईमानों को भी दान करते देखा है, बेईमानों को भी राम-नाम कहते देखा है। तो भाई परमात्मा का मानना, इस तरह का धर्म का मानना, मानना नहीं है। दान करोगे तो कुछ लाभ तो होगा ही लेकिन दान करने से ज्यादा ऊँची चीज है ईमानदारी से धन कमाना, ईमानदारी से काम करना, जो मिले, उसमें सन्तोष करना, मिले हुए में से बचे तो देना—यह हुआ देना। बहुत-सा दान करना अच्छा नहीं है। क्योंकि दान करने के लिए आदमी कभी-कभी बेईमानी करने लगता है। बेईमानी का धन दान करने से लाभ नहीं होता, ईमानदारी का धन दान करने से लाभ होता है।

इसलिए मैं यह निवेदन कर रहा था कि संसार के साथ ईमानदारी का व्यवहार करो, परमात्मा के प्रेमी रहो। यह कब होगा? जब तुम यह सत्य अनुभव करोगे कि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए। जब तक इस सत्य को नहीं मानोगे कि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, तब तक परमात्मा के प्रेमी नहीं हो सकते और संसार के लिए

ईमानदार नहीं हो सकते। तो यह अध्यात्मवाद जो है ज्ञान का जो प्रभाव है वह बहुत जरूरी है, ज्ञान से ही मनुष्य, मनुष्य कहलाता है। तो ज्ञान का प्रकाश हमें यह प्रेरणा देता है कि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए। यह ज्ञान प्रेरणा देता है और विश्वास हमें प्रेरणा देता है कि प्रभु अपने हैं। और कर्त्तव्य हमें प्रेरणा देता है कि सही काम करेंगे। सही काम करेंगे और अचाह होकर रहेंगे, प्रभु को अपना मानेंगे। तीन बातें हुईं—सही काम करेंगे, अचाह होकर रहेंगे और प्रभु को अपना मानेंगे। तो प्रभु का काम करने से काम के अन्त में शान्ति मिलेगी, अचाह होने से भी शान्ति मिलेगी और प्रभु का होकर रहने से भी शान्ति मिलेगी। क्योंकि परमात्मा समर्थ है तो समर्थ को अपना मानेंगे, तो अभय हो जाएँगे। परमात्मा स्वतन्त्र है तो हम परमात्मा के होकर स्वतन्त्र हो जाएँगे, परमात्मा उदार है तो हम भी उदार हो जाएँगे। परमात्मा प्रेम का भण्डार है, तो हमारे जीवन में भी प्रेम का उदय हो जाएगा तो परम स्वतन्त्र होना, परम उदार होना, परम प्रेम से भरपूर होना—यह मनुष्य को कब प्राप्त होगा? जब वह परमात्मा को अपना मानेगा, परमात्मा को पसन्द करेगा। क्योंकि उदारता, स्वाधीनता और परम प्रेम परमात्मा में ही है। परमात्मा को ही परम उदार कहा है, परमात्मा को ही परम स्वतन्त्र कहा है, परमात्मा को ही परम प्रेम का भण्डार कहा है। तो इस तरह से हम परमात्मा को अपना मानेंगे, परमात्मा को हम पसन्द करेंगे तो यह भजन है। इससे भजन होगा, परमात्मा का प्यार पैदा होगा, परमात्मा हमें प्यारा लगेगा। जिसका कोई प्यारा होता है—बड़े अनुभव की बात बताऊँ आपको जिसके जीवन में किसी का प्यार होता है न, उसके जीवन में नीरसता कभी नहीं आती, खिन्नता कभी नहीं आती, क्षोभ कभी नहीं आता क्योंकि प्यार जिसमें पैदा होता है, उसके लिए रसरूप हो जाता है और जिसके प्रति होता है, उसको भी उससे रस मिलता है।

कोई प्यार करे तो आपको भी रस मालूम होगा और उसको भी रस मालूम होगा। प्यार देने में भी रस और प्यार पाने में भी रस। यह अनुभव है आपको कि नहीं? किसी को अगर कोई प्यार करता है तो प्यार किसी वस्तु देने का नाम नहीं है, किसी क्रिया का नाम नहीं है। अगर आपको कोई प्यारा लगता है तो उसे भी मजा आता है और आपको भी मजा आता है। प्यार में मजा ही मजा है। प्यार में कभी कष्ट नहीं होता, प्यार में कभी क्षोभ नहीं होता, प्यार में कभी अशान्ति नहीं होती, प्यार में कभी नीरसता नहीं आती, रस ही रस रहता है। तो प्यार कब पैदा होता है कि जब हम परमात्मा को अपना मानते हैं। जो लोग यह मानते हैं कि परमात्मा अपना है, उनके जीवन में प्रेम का उदय हो जाता है। ऐसे ही कर्त्तव्य में भी रस ही रस है। ऐसे ही स्वाधीनता में, अचाह होने में भी रस ही रस है। जिसे कुछ नहीं चाहिए, वह मस्त रहता है। सही काम करता है, वह भी मस्त रहता है और जो प्रेमी होता है, वह भी मस्त रहता है। तो उन्होंने तीन तरीके बताए आपके सामने, कि सही काम करके भी शान्ति पा सकते हो, अचाह होकर भी शान्ति पा सकते हो और प्रेमी होकर भी शान्ति पा सकते हो। शान्ति तीनों तरह से मिल सकती है। काम करके मस्त रहो, शान्ति मिलेगी, अचाह हो जाओ, शान्ति मिलेगी, परमात्मा को अपना मान लो, प्रेमी हो जाओ, शान्ति मिलेगी। तो प्रेम में भी रस है, अचाह होने में भी रस है, कर्त्तव्यपालन में भी रस है।

प्रवचन 11

मेरे निजस्वरूप महानुभाव तथा भाई और बहन!

आज हमें इस मूल प्रश्न पर विचार करना है कि वास्तव में प्रभु-चिन्तन क्या है। इस प्रश्न पर विचार करने के पूर्व यह जानना आवश्यक होगा, कि हम चिन्तन और कर्म के भेद पर विचार करें। जब तक साधक कर्म और चिन्तन के भेद को नहीं जानता है, तब तक यह बात कि चिन्तन क्या है, ठीक से समझ नहीं पाता।

कर्म किसे कहते हैं? इस पर विचार करने से ऐसा मालूम होता है, जो किया जाता है, जिसे करते हैं इसी का नाम कर्म है। और चिन्तन किसे कहते हैं? जो होता है, उसी का नाम चिन्तन है। चिन्तन होता है, कर्म करते हैं। अब आप विचार करें कि जिसे आज आप चिन्तन कहते हैं, उसमें करने का अभिमान प्रतीत होता है या नहीं होता है। जप करते हुए यह मालूम होता, कि मैं जप करता हूँ, ध्यान करते हुए यह मालूम होता है कि मैं ध्यान करता हूँ तब जिसे आप करते हैं, वह कर्म हुआ, चिन्तन नहीं हुआ, ध्यान नहीं हुआ।

आप सोचिए और बहुत गम्भीरता से सोचिए, कि जो चीज होती है, वह अखण्ड होती है और जो करते हैं वह सीमित होती है। कर्म हमेशा सीमित होता है। भोजन आप करते हैं—उसकी एक सीमा है। भोजन पचता है, वह अखण्ड रूप से पचता है, निरन्तर पचता है, लगातार पचता रहता है। तो भोजन करना और भोजन का पचना एक ही चीज है क्या? इस सम्बन्ध में आपका क्या विचार है? एक चीज नहीं है, अलग-अलग है।

तो अब आप सोचिए कि जप करना और स्मरण होना, सिमरन होना इसमें भेद होगा कि नहीं? किन्तु आज बहुत-से साधक किसी नाम विशेष के जप को, किसी मन्त्र विशेष के जप को ऐसा मानते हैं कि हम जप करते हैं। हम अपने प्यारे को याद करते हैं। याद करते हुए वे ऐसा महसूस करते हैं, उन्हें ऐसा मालूम होता है। वास्तव में बात यह है, कि आप जो कुछ भी करते हैं, उसकी सीमा होगी और वह करना शरीर के सहयोग के बिना नहीं होगा। और जिस शरीर की सहायता से आप करते हैं, वह शरीर एक दिन आप से अलग हो जाएगा। और उस समय वह आपका करना करना नहीं रहेगा। हाँ, एक बात रहेगी कि किए हुए का अभिमान और किए हुए का प्रभाव आपमें अंकित होगा और आप यह सोचेंगे कि मैंने यह किया था, मैंने यह किया था। जब करना सीमित होता है, तो उसका जो परिणाम है, उसका जो फल है, वह भी सीमित होता है।

इसीलिए कर्म के द्वारा यदि प्रभु की प्राप्ति होती, तो फिर भाई, सबसे पहले प्रभु उसको मिलता, जो अधिक से अधिक काम कर सके। आज के वैज्ञानिक युग में प्राणी की अपेक्षा यन्त्र अधिक काम करता है। एक आदमी जितना काम करता है, यन्त्र उससे कई लाख गुना अधिक

काम करता है। तो इससे तो यह सिद्ध होता है, कि यदि करने से प्रभु-प्राप्ति का सम्बन्ध होता, तो यन्त्र को पहले प्रभु की प्राप्ति होती और मनुष्य को पीछे होती। परन्तु ऐसी बात नहीं है।

इसका आप यह अर्थ न समझ बैठें कि करने का जीवन में कोई स्थान नहीं है। करने का भी जीवन में स्थान है, होने का भी जीवन में स्थान है और है का भी जीवन में स्थान है। करने का स्थान क्या है? केवल इतना कि जो कुछ प्राप्त है, जो कुछ मिला है, वस्तु रूप से, योग्यता रूप से, सामर्थ्य रूप से, उसके द्वारा आप किसी की भी सेवा करें अथवा उसके द्वारा किसी का अहित न करें। इन दोनों में भी बड़ा अन्तर है। हमें जो शक्ति मिली है, उसके द्वारा हम किसी के साथ कोई बुराई नहीं करेंगे—एक बात और हमें जो शक्ति मिली है उसके द्वारा दूसरों के साथ भलाई करेंगे यह बिल्कुल दूसरी बात है।

किन्तु कर्म की शुद्धि कब होगी? कर्म की शुद्धि तब होगी, जब आपके जीवन में पहले भाव की शुद्धि होगी। तो हम किसी के साथ बुराई नहीं करेंगे, यह भाव की शुद्धि है। भाव की शुद्धि होने पर आपके द्वारा जो भी काम होगा, वह हितकर होगा, भला होगा, बुरा नहीं होगा। अब यह निर्णय आपका है कि भई, हम किसी के साथ बुराई नहीं करेंगे। क्यों नहीं करेंगे? इसमें एक वैज्ञानिक सत्य है। और वह वैज्ञानिक सत्य यह है कि कर्म-विज्ञान की दृष्टि से, कर्म की साइंस की दृष्टि से हम जो कुछ करते हैं किसी के साथ, वह कालान्तर में समय पाकर कई गुना अधिक अपने प्रति हो जाता है। जैसे कल मैंने सुना कि जिन लोगों ने एक बालक को कत्ल कराने में मदद की थी, सुना जाता है, कि शाहजहाँ ने उन लोगों को नाव में बिठा कर डुबा दिया। तो कालान्तर में उनके प्रति वही हुआ, जो उन्होंने एक निर्दोष बालक के साथ किया था।

यह तो मैंने आपके सामने एक उदाहरण दिया किन्तु सोचना यह है कि भई, यह जो नियम है, यह किसी मनुष्य का बनाया हुआ नहीं है, यह किसी इंसान का बनाया हुआ नहीं है। यह तो प्राकृतिक नियम है, ईश्वरीय नियम है कि दूसरों के साथ किया हुआ कालान्तर में अपने साथ हो ही जाता है।

यदि यह कर्म-विज्ञान आप सब भाई मान लें और उसमें विश्वास कर लें, आस्था कर लें तो फिर आपके जीवन में कभी भी बुराई करने की बात उत्पन्न ही नहीं होगी, किन्तु जब आप यह बात भूल जाते हैं कि जो हम दूसरों के साथ करेंगे, वह हमारे साथ होगा ही, तब हम किसी के साथ बुराई करने की सोचते हैं। सोचते क्यों हैं? अपने व्यक्तिगत सुख के लालच से। यदि हमारे जीवन में व्यक्तिगत सुख का प्रलोभन न रहे, तो सच मानिए, किसी प्रकार की बुराई किसी भाई या बहन के जीवन में कभी आ ही नहीं सकती।

तो अब यह आपको सोचना है, कि आप व्यक्तिगत सुख के लिए क्या दूसरों को दुःख देना चाहते हैं? व्यक्तिगत लाभ के लिए क्या आप दूसरों को हानि पहुँचाना चाहते हैं? व्यक्तिगत सम्मान के लिए क्या आप दूसरों का अपमान करना चाहते हैं? यदि करना चाहते हैं तो आपका किया हुआ अपमान आपको भोगना ही होगा। इससे आप बच नहीं सकते। यह एक यूनिवर्सल टुथ यानि सार्वभौमिक सत्य है।

अब सोचने की बात यह है कि भई, करने का सम्बन्ध चिन्तन के साथ नहीं है। क्यों नहीं है? कि चिन्तन उसका होता है, जिसकी आवश्यकता होती है। जिसकी आप जरूरत अनुभव करते हैं, उसका चिन्तन होता है। जैसे, प्यास लगने पर किस भाई को, किस बहन को पानी का चिन्तन नहीं होता? है कोई ऐसा भाई, जो इस बात को कह

सके कि मुझे प्यास बहुत जोरों की लगी है, लेकिन पानी का चिन्तन नहीं करता। है कोई? कोई नहीं है।

तात्पर्य क्या निकला? आवश्यकता का चिन्तन होता है। चिन्तन किसी वस्तु का नहीं होता, किसी व्यक्ति का नहीं होता, किसी परिस्थिति का नहीं होता, किसी अवस्था का नहीं होता। चिन्तन होता है अपनी आवश्यकता का। तो आप जब यह स्वीकार कर लेते हैं कि अमुक वस्तु से मेरी यह आवश्यकता पूरी होगी, तब आप ऐसा अनुभव करते हैं, ऐसा फील करते हैं कि मुझे अमुक वस्तु का चिन्तन हो रहा है। लेकिन वास्तव में तो आपमें यदि कोई आवश्यकता है, उसके कारण चिन्तन हो रहा है।

यदि आप अभी-अभी, इसी जीवन में और इसी परिस्थिति में, इसी हालत में जो हालत आपकी है यह आवश्यकता अनुभव करें कि मैं तो अपने प्यारे प्रभु से मिलना चाहता हूँ, मुझे अपने प्रभु की आवश्यकता है, तो क्या आपके जीवन में अपने आप प्रभु का चिन्तन नहीं होगा। क्या राय है आपकी? होगा । तो अब आप सोचिए, आवश्यकता अनुभव करें वस्तुओं की, व्यक्तियों की, परिस्थितियों की और जप करें नाम का और मन्त्र का। तो अब आप सोचिए, कि क्या इस बात को नहीं जानते हैं कि हम गायत्री का तो जप करते हैं, द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करते हैं, या आप सोचिए किसी मजहब के अनुसार कुरान की तो आयत बोलते हैं—देखो भई, बुरा मानने की बात नहीं है। देखिए, अपनी-अपनी भाषा में अपने-अपने ढंग से सभी ईश्वरवादियों ने प्रभु को पुकारा है और प्रभु ने सभी की आवाज सुनी है, सभी को अपनाया है। यह नियम नहीं है कि वह पंजाबी में या संस्कृत में ही सुनेगा या अरबी में सुनेगा, या फारसी में सुनेगा या हिन्दी में ही सुनेगा। आपकी जो भाषा होगी, वही सुनेगा।

इसलिए, मेरे भाई, अपनी-अपनी भाषा में सभी अपने प्रभु को पुकारते हैं, पुकारते रहे हैं, पुकारते रहेंगे। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आप संस्कृत में न पुकारें या अपनी रुचि के अनुसार जो भाषा है, उसमें न पुकारें। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि आप यह आग्रह करें कि जब तक अरबी नहीं बोलोगे, अल्लाह ताला खुश नहीं होगा। संस्कृत नहीं बोलोगे तो ब्रह्म जो है वह प्रसन्न नहीं होगा। इसका अर्थ यह भी नहीं है।

आपने देखा होगा कि एक छोटा-सा बालक अपनी माँ को कभी-कभी भाभी कह कर पुकारता है, कोई-कोई जीजी कह कर पुकारता है और कोई-कोई आज कल की प्रथा के अनुसार मम्मी कहता है, कोई मामा कहता है—इत्यादि, इत्यादि लेकिन माँ इस बात को जानती है कि यह मेरा जो शिशु है वह मुझे अपनी बड़ी बहन मान कर जीजी नहीं कहता है, अपने बड़े भाई की पत्नी मान कर भाभी नहीं कहता है, यह मुझको ही कहता है। जब एक साधारण माँ इस बात को अच्छी तरह से जान लेती है कि मेरा उत्पन्न किया गया बालक चाहे जिस ढंग से पुकारे, मुझको ही पुकारता है तो मेरे भाई, क्या वह प्रभु उस माँ के बराबर भी जानकार नहीं है? जो उसमें यह आग्रह होगा कि मेरी ही भाषा में मुझको पुकारा जाए—ऐसा नियम प्रभु-चिन्तन का नहीं है।

तात्पर्य मेरे कहने का यह था कि भाई, कर्म और चिन्तन के भेद को अलग-अलग करके जब आप अपने जीवन में यह देखेंगे कि हमें प्रभु का चिन्तन करना है या हमारे जीवन में प्रभु का चिन्तन होना चाहिए, तो उसका उपाय क्या होगा? हम अपने प्रभु की आवश्यकता अनुभव करें और उसको अपना मानें। और तीसरी बात क्या? कुछ और न चाहें।

आप विचार करें, बहुत से भाई मुझसे कहते हैं कि आप भक्ति की बात तो बहुत कहते हैं, प्रेम की बात भी बहुत कहते हैं लेकिन हम क्या करें जिससे कि हमको भक्ति और प्रेम की प्राप्ति हो। हम आपसे पूछते हैं जरा विचार करें और बहुत ही गहराई से इस बात पर विचार करें कि करने से जो कुछ मिलता है, वह सदैव रहता है क्या?

आप विचार कीजिए। क्यों? करने का साधन ही अखण्ड नहीं है, करने की सामर्थ्य भी अखण्ड नहीं है, तो जिसका कारण अखण्ड नहीं है, उसका फल कैसे अखण्ड हो सकता है। इसलिए करने का और चिन्तन का भेद कर दो और भेद इस रूप में कर दो कि चिन्तन उसी का होगा, जिसकी हम आवश्यकता अनुभव करेंगे, जिसकी हम जरूरत अनुभव करेंगे और जिसको हम अपना मानेंगे।

कल्पना करो, कि हमने आवश्यकता अनुभव की और उसका हमें चिन्तन हुआ, लेकिन वहाँ एक बात और देखनी होगी कि आवश्यकता के रूप में जिसको बुलाते हैं, उससे उसके भिन्न को भी कुछ लेना चाहते हैं क्या? कल्पना करो, कि आपको किसी अपने मित्र की याद आए और उसकी याद के साथ यह लगा हो कि भई, वे यहाँ होते, तो स्वामी जी महाराज को भेजने के लिए मोटर मिल जाती। तो सचमुच यह चिन्तन मोटर का है या उस व्यक्ति का है? क्या कहेंगे आप? उस व्यक्ति का तो नहीं है, न मोटर का है। क्योंकि जिसके लिए जिसको चाहते हैं, उसका चिन्तन होता है, कि जिसके लिए चाहते हैं? जिसको चाहते हैं, उसका चिन्तन नहीं है यह। यह धोखा है दिमाग में, कि हम प्रभु का चिन्तन करते हैं। चाहते तो हैं वस्तु, चाहते हैं तो व्यक्ति और कहते हैं यह कि हम प्रभु का चिन्तन करते हैं, वह प्रभु का चिन्तन नहीं है।

तात्पर्य क्या निकला? अगर आप किसी भी वस्तु के साथ ममता रख सकते हैं, किसी भी व्यक्ति के साथ ममता रख सकते हैं, तो प्रभु के साथ आत्मीयता नहीं कर सकते, नहीं कर सकते। भले ही आप ऊपर से आठोपहर भगवान का नाम लेते रहें, जप करते रहें। तो करते रहेंगे, वह निरर्थक जाएगा ऐसा मेरा तात्पर्य नहीं है। उसका फल बनेगा लेकिन उसका अर्थ ईश्वर-चिन्तन नहीं है, प्रभु-चिन्तन नहीं है, भजन उसका अर्थ नहीं है। क्योंकि भजन तो उसका होता है, जिसकी हम जरूरत अनुभव करते हैं।

तो भाई मेरे, पहला प्रश्न ईश्वर-चिन्तन के लिए कौन-सा जीवन में आएगा? वह यह आएगा कि हम केवल ईश्वर को चाहते हैं क्या? अगर आप केवल ईश्वर को नहीं चाहते हैं, तो ईश्वर को नहीं चाहते हैं। चाहे आप भले ही ईश्वर को मानते हों, ईश्वर पर विश्वास भी करते हों। किन्तु अगर आप अकेले ईश्वर को नहीं चाहते हैं, तो सचमुच ईश्वर को नहीं चाहते हैं। क्यों? प्रभु ने भोग-प्राप्ति के लिए मानव-मात्र को कर्म-सामग्री यानि कर्म करने के साधन वस्तु रूप में, योग्यता रूप में, सामर्थ्य रूप में सबको दिए हैं। और उसी कर्म के द्वारा हमको-आपको सुख और दुःख भोगना पड़ता है।

ऐसा कोई कर्म आजतक किसी से बना नहीं जो यह कह सके कि हमारे जीवन में किसी प्रकार का दुःख नहीं रहा, केवल सुख ही सुख है। ऐसी बात किसी ने कर्म के द्वारा अभी तक प्राप्त नहीं कर पाई। इसलिए आप देखेंगे कि विश्व के इतिहास में ऐसा किसी व्यक्ति का जीवन नहीं मिलेगा, जिसके जीवन में किसी न किसी प्रकार का दुःख न हो। केवल सुख हो ऐसा जीवन नहीं मिलेगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि कर्म के द्वारा हम सुख-दुःख भोग सकते हैं।

अब दूसरी चीज देखिए, कर्म के ऊपर की चीज क्या है? ज्ञान। ज्ञान के द्वारा हम क्या प्राप्त कर सकते हैं? तो ज्ञान के द्वारा हम पराधीनता से रहित हो सकते हैं, स्वाधीन हो सकते हैं, आजाद हो सकते हैं। तो वह ज्ञान कि जिससे आपको आजादी मिल सकती है और संस्कृत भाषा में कहें तो मुक्ति मिल सकती है, वह ज्ञान भी प्रभु ने हरेक भाई को हरेक बहन को दिया है। आप कहेंगे, कि हमें तो वह ज्ञान नहीं दिया जिससे हमें मुक्ति प्राप्त हो नहीं तो हम अभी मुक्ति प्राप्त कर लेते। यह बात आप बिना सोचे कह सकते हैं, बिना विचार किए कह सकते हैं। अगर आप ठीक-ठीक सोचेंगे और विचार करेंगे तो यह बात आपको माननी ही पड़ेगी, कि आपको वह ज्ञान मिला है, जिससे आप अभी-अभी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

अब आप विचार कीजिए कि इतनी बड़ी सृष्टि में आपके जीवन में बन्धन कितना है? बहुत थोड़ा। इस समय लाखों युवक मरणासन्न पड़े होंगे, जिनके प्राण-पखेरू उड़ गए होंगे और उनके सम्बन्धी बिलख-बिलख कर रो रहे होंगे, लेकिन आप तो नहीं रो रहे हैं। आप उनसे मोह-रहित हैं कि नहीं? हैं। अच्छा भाई और सोचो बहुत से लोगों को बड़ी-बड़ी हानि इस समय हो रही होगी। आप तो उनकी हानि के दुख से दुखी नहीं हैं। आप उससे लोभ-रहित हैं कि नहीं? जी, बहुत-से लोग ऐसे हैं, जिनको आप जानते भी नहीं हैं, आपके मन में उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है, आप उनसे सम्बन्ध-रहित हैं कि नहीं?

आप सोचिए, बन्धन क्या है? किसी और ने आपको बाँध दिया है? किसी ने नहीं बाँध दिया है। आपकी इस भूल ने, कि आप जानते हैं कि मिला हुआ शरीर भी सदैव नहीं रहेगा—तब भी आप कहते हैं—मेरा हाथ। तो किसने बाँधा? आपकी इस मान्यता ने कि 'मेरा

हाथ' अथवा किसी और ने आप को मजबूर होकर बाँध दिया? क्या राय है आपकी? अपनी मान्यता ने हमें बाँधा है। तो मिली हुई वस्तु को व्यक्तिगत मान लेना—इसके अतिरिक्त बताओ, और बन्धन क्या है? और जिस वस्तु से आपकी जातीय भिन्नता है, उसकी कामना रखना ही बन्धन है। आप ही बताओ उसके अतिरिक्त बन्धन क्या है? और जो वस्तु आपको मिली है, उसके तद्रूप हो जाना, उसमें घुल-मिल जाना एक हो जाना। बताओ, इसके अतिरिक्त बन्धन क्या है? एक ओर आप इस बात को जानते हैं कि मिली हुई कोई भी वस्तु व्यक्तिगत नहीं है। बड़े-बड़े राजा और महाराजा कहते थे कि स्टेट हमारी, मगर आज किसकी है? तो भाई, ऐसे ही एक दिन वह भी आएगा, हर भाई के सामने आएगा, हर बहन के सामने आएगा, जिस समय उसे यह मानना पड़ेगा कि यह शरीर मेरा नहीं है। यह मुझ से अलग हो रहा है। लेकिन क्या चीज साथ रह जाएगी? जो किया है उसका प्रभाव। इसलिए किए हुए का प्रभाव मिटाने के लिए जाने हुए का आदर करना पड़ता है। जब तक जीवन में अपने जाने हुए का प्रभाव अपने पर नहीं होता तब तक किए हुए का प्रभाव रहता है। तो जाना हुआ क्या है? केवल इतना ही आपका जाना हुआ है कि कोई भी उत्पन्न हुई वस्तु, पैदा हुई वस्तु आपकी नहीं है और आपके लिए नहीं है। यह आपका जाना हुआ है। जिस समय इस जाने हुए का प्रभाव होगा, उसी समय आप ममता से, आप अहंता से, आप कामना से रहित हो जाएँगे। जिस समय आप ममता, अहंता और कामना से रहित हो जाएँगे, उसी समय आपको मुक्ति मिलेगी—मुक्ति। आप चाहो तो मिले, न चाहो तो मिले, ईश्वर को मानो तो मिले, न मानो तो मिले, आत्मा को मानो तो मिले न मानो तो मिले। और आप भले ही ब्रह्म को मानते रहो गुरुदेव को

मानते रहो आत्मा को मानते रहो, और मिले हुए की ममता, कामना और उसके तादात्म्य का त्याग मत करो, मैंने आपको चेलैंज दिया है कि देखो, आपको मुक्ति मिल तो जाए। न अभी मिले न कभी मिले। यह मत सोचना कि अभी नहीं मिली, मरने के बाद मिलेगी। जो जीवन में मुक्त नहीं होता वह मरने के बाद कभी मुक्त नहीं होता। और जो ऐसा मानता है, वह अपने को धोखा देता है।

इसलिए मेरे भाई विचार करने की चीज है कि भोग के लिए चिन्तन अपेक्षित नहीं है, कर्म अपेक्षित है। मुक्ति के लिए चिन्तन अपेक्षित नहीं है, ज्ञान अपेक्षित है। क्यों? बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं मिलती।

अब यहाँ प्रश्न पैदा होता है कि ईश्वर-चिन्तन किसके लिए अपेक्षित है? तो ईश्वर-चिन्तन उस भाई की आवश्यकता है, उस बहन की आवश्यकता है जो भुक्ति और मुक्ति को फुटबॉल बना कर ठुकरा दे। जो इस बात को कह सके कि मुझे भोग नहीं चाहिए, मुझे मोक्ष नहीं चाहिए। आप सोचेंगे भई तब तो ईश्वर-चिन्तन बड़ा महँगा हो गया, जिसके लिए हमें भोग छोड़ना पड़ेगा, मोक्ष छोड़ना पड़ेगा।

यहाँ जरा गम्भीरता से विचार करने की बात है कि भई, सोचो तो सही कि मोक्ष की आवश्यकता किसको होती है? मुक्ति कौन चाहता है? जो बँधा हुआ हो वह या छुटा हुआ है वह? जो बँधा हुआ हो। जो भोग चाहता है वह बँधा हुआ है या जो भोग नहीं चाहता वह बँधा हुआ है? जो भोग चाहता है, वही बँधा हुआ है। भोग का त्याग तो योग के लिए करना पड़ता है तो सोचिए प्रभु-प्रेम के लिए भोग की आवश्यकता रह जाती है क्या? तो जिस वक्त आप भोग नहीं चाहते हैं, उसी समय मुक्ति प्राप्त होती है, मुक्ति की कामना शेष नहीं रहती। मुक्ति

की आवश्यकता आप कब तक अनुभव करते हैं? जब तक आप भुक्ति चाहते हैं। जब तक आप भोग चाहते हैं तभी तक आप योग की आवश्यकता अनुभव करते हैं। और जिस समय आपके जीवन में से भोग की रुचि का नाश हुआ, भोग की वासना का नाश हुआ, उसके पश्चात् न आप योग चाहते हैं न मोक्ष चाहते हैं। क्यों नहीं चाहते? योग और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। चाह अप्राप्त की होती है।

बहुत गम्भीरता से विचार करें—कामना जो होती है, वह अप्राप्त की होती है, प्राप्त की नहीं होती। जब आपके जीवन में भोग की रुचि नहीं रहती अथवा भोग के परिणाम के प्रभाव से जब आपको भोग से अरुचि हो जाती है, उसके बाद स्वतः प्राप्त होता है योग और स्वतः प्राप्त होती है मुक्ति। किन्तु यदि वह योग का रस—योग का रस जानते हैं क्या है? शान्त रस और मोक्ष का रस जानते हैं क्या है? अखण्ड रस। यदि आप शान्त रस और अखण्ड रस के प्राप्त होने पर भी विशेष रस की आवश्यकता अनुभव करें तब आपके सामने ईश्वर-चिन्तन की आवश्यकता आती है।

देखिए जिन दार्शनिकों ने, जिन सत्य की खोज करने वालों ने केवल दुःख-निवृत्ति को पसन्द किया, उनके सामने ईश्वर की सत्ता का प्रश्न नहीं आया। जिन साधकों ने केवल स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रश्न अपने सामने रखा, आवश्यकता अनुभव की, उनके सामने भी ईश्वर की सत्ता का प्रश्न नहीं आया। यह ईश्वर-चिन्तन का प्रश्न किस साधक के सामने आता है, किस भाई और बहन के सामने आता है, जो भाई, जो बहन इस बात को स्वीकार करें कि उसको एक ऐसे रस की आवश्यकता है जो योग और मोक्ष से भी विलक्षण हो।

अब जो दार्शनिक यह कहे, कि भई दुःख-निवृत्ति के आगे की बात हमको नहीं चाहिए—बड़ी सुन्दर बात है। हम थोड़े ही यह कहते

हैं कि आप उसकी जरूरत अनुभव करें। कोई कहे कि पराधीनता नाश होने के बाद, अमर जीवन की प्राप्ति के बाद हमको कुछ नहीं चाहिए। बड़ी सुन्दर बात है। आप अमर जीवन पाकर संतुष्ट हो जाइये। लेकिन आपको यह तो अधिकार नहीं है कि अगर किसी को चाह उससे आगे की हो तो उससे आप यह चाहें कि मत चाहो। यह तो नहीं है न अधिकार। तो कहने का तात्पर्य मेरा यह है कि ईश्वर-चिन्तन है क्या? ईश्वर में प्रियता, ईश्वर हमको प्यारा लगे। अब क्यों प्यारा लगे? इसलिए प्यारा लगे कि हमारे प्यार से उसको रस मिलेगा। सच पूछिए, वह ईश्वर-चिन्तनवाद है, जो प्रभु को रस देने के लिए हो। आप भी वही बात करते हैं हम भी वही बात करते हैं क्या? जब आप प्रार्थना करने बैठते हैं, जब आप कोई बात कहने बैठते हैं, तो दो बात कहते हैं—या तो दूसरों की निन्दा करेंगे—तन की करेंगे, कभी मन की करेंगे, कभी धन की करेंगे, पुरुष और स्त्री की करेंगे या प्रभु को सजग करेंगे इस बात के लिए कि आपको यह करना चाहिए। मैं पूछता हूँ कि आपको प्रभु के कर्त्तव्य का ज्ञान हो गया और दूसरों के दोषों का ज्ञान हो गया, और अपने कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं हुआ। जरा सोचिए तो सही यह आज की आपकी उपासना है। माफ़ करें—यह आज का आपका सत्संग है।

प्रवचन 12

मेरे निजस्वरूप महानुभाव तथा भाई और बहन !

सुख-दुःख का ही दूसरा नाम परिस्थिति है। और सुख-दुःख का नाम ही संसार है। तो सुख-दुःख के सदुपयोग से हम सुख-दुःख से अतीत जीवन पा सकते हैं। सुख-दुःख का सदुपयोग क्या? ऐसा लगता है कि सुख का सदुपयोग उदार होने में है और दुःख का सदुपयोग विरक्त होने में है, त्याग करने में है। जो दुःख में विरक्त है, सुख में उदार है अथवा यों कहो कि जो सुख में सेवा करता है और दुःख में त्याग को अपनाता है, वह सेवा और त्याग के द्वारा स्वतः सुख-दुःख से मुक्त होकर चिरशान्ति, जीवन-मुक्ति, भगवद् भक्ति प्राप्त कर लेता है।

अब हमें किससे मुक्त होना है? सुख और दुःख से। दुःख से तो सभी मुक्त होना चाहते ही हैं परन्तु सुख से मुक्त होना नहीं चाहते। बस यही एक हमारी भूल है कि हम सुख से मुक्त होना नहीं चाहते। सुख को पसन्द करते हैं। तो सुख को पसन्द करते हैं अपनी मर्जी से और दुःख भोगना पड़ता है बेबसी से, मजबूरी से। ऐसा होता नहीं कि सुख तो भोगते रहें और दुःख न भोगना पड़े। इसलिए हमें सुख से मुक्त होने के लिए प्रयास करना चाहिए। कैसे हों?

सुख में और रस में एक बड़ा भेद है। तो भेद क्या है? सुख भोगने से भोग-शक्ति का ह्रास होता है और भोग-सामग्री का विनाश होता है। यह प्राकृतिक विधान ही है। अगर आप लोगों में से किसी भाई-बहन को ऐसा अनुभव न हो तो तर्क कर सकते हैं। सुख भोगने से भोग-शक्ति का ह्रास और भोग-सामग्री का विनाश होता है। स्वाभाविक बात है होता ही है इसलिए हमें सुख से मुक्त होना है। कैसे हो सकते हैं? कि सुख-दुःख से अतीत जो जीवन है, जो सत्य है, जो परमात्मा है, उसकी हम आवश्यकता अनुभव करें—आवश्यकता अनुभव करें।

जब हम अपने द्वारा अपने लिए परमात्मा की आवश्यकता अनुभव करेंगे तब सुख-भोग की रुचि नाश हो जाएगी। स्वाभाविक बात है। और जब सुख-भोग की रुचि नाश हो जाएगी, तब देह का, शरीर का जो तादात्म्य है, जो सम्बन्ध है, वह टूट जाएगा। सुख-भोग की रुचि का नाश होने से शरीर और संसार का सम्बन्ध टूट जाता है। यह नहीं है कि भोग की रुचि का नाश होने से अभी शरीर छूट जाए सो नहीं। शरीर तो छूटेगा ही, अभी तो नहीं छूटेगा। लेकिन जो उत्पन्न हुआ है, उसका विनाश होगा ही। उसमें परिवर्तन हो ही रहा है। तो शरीर के छोड़ने का प्रश्न नहीं है, संसार के छोड़ने का प्रश्न नहीं है। प्रश्न है कि शरीर और संसार से हमारा सम्बन्ध न रहे। हमारा सम्बन्ध टूट जाए। शरीर का संसार का सम्बन्ध नहीं टूटेगा, वह तो अभिन्न है, दोनों एक जाति के हैं। शरीर से हमारा जो सम्बन्ध है, वह टूट जाएगा।

आप कोई ऐसा दुःख बताइए कि जिसका दृश्य से सम्बन्ध न हो और दुःख हो जाए। ऐसा कोई सुख बताइये। सुख-दुःख संसार के सम्बन्ध से ही होता है। और जब संसार का सम्बन्ध टूट जाता है तो दुःख-सुख से भी छूट जाता है। और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती

है—यह भी कह सकते हैं और परमात्मा से सम्बन्ध हो जाता है—यह भी कह सकते हैं।

इस दृष्टि से देखा जाए, तो परमात्मा की प्राप्ति में या परमात्मा के सम्बन्ध को स्वीकार करने में, किसी प्रकार की अस्वाभाविता, असुविधा नहीं है सम्बन्ध स्वीकार करने में? लेकिन कब? संसार से सम्बन्ध नहीं रहता, तब। तो संसार से सम्बन्ध कब नहीं रहता? जब हमें अपनी वास्तविक माँग का अनुभव हो जाए। हमारी वास्तविक माँग क्या है—इसका अनुभव हो जाए तो शरीर और संसार का सम्बन्ध टूट जाता है। शरीर रहता है, संसार भले दिखता भी रहे, लेकिन सम्बन्ध टूट जाएगा। और यही एक ऐसा मौलिक सत्य है, एक स्वाभाविक सत्य है कि संसार से सम्बन्ध टूटने से हम-अगर अध्यात्मवादी हैं तो अपने में संतुष्ट हो जाते हैं। संसार का सम्बन्ध टूटने से अपने में संतुष्ट हो जाते हैं। और अपने में संतुष्ट होने से हमें परमात्मा मिल जाता है। क्योंकि परमात्मा अपने में ही है। अपना तो है ही, पर अपने में भी है। और जब हम संसार से सम्बन्ध नहीं तोड़ते हैं, तब परमात्मा के रहते हुए भी हम स्वयं परमात्मा से विमुख हो जाते हैं। यह एक जीवन का सत्य है।

अब आप सोचिए, आपके सामने जो प्रश्न है वह यह नहीं है कि क्या बताएँ हमको अमुक प्रकार की वस्तु प्राप्त नहीं हुई, योग्यता प्राप्त नहीं हुई, सामर्थ्य प्राप्त नहीं हुई, इसलिए हम परमात्मा से दूरी अनुभव कर रहे हैं। ऐसी बात नहीं है। परमात्मा से दूरी अनुभव कर रहे हैं क्योंकि हमने अपनी मर्जी से ही संसार का सम्बन्ध जोड़ लिया है, संसार का सम्बन्ध—संसार नहीं, शरीर नहीं, शरीर और संसार का सम्बन्ध। कोई वस्तु नहीं, कोई व्यक्ति नहीं, वस्तु और व्यक्ति का सम्बन्ध, जिसे हम स्वीकार करते हैं, उस हमारे बनाए हुए सम्बन्ध से ही परमात्मा

से दूरी अनुभव करने लगते हैं, भेद अनुभव करने लगते हैं, भिन्नता अनुभव करने लगते हैं।

यदि हम अपने ही बनाए हुए सम्बन्ध को तोड़ दें अथवा जो कुछ हमें शरीर और संसार के रूप में प्रतीत होता है, उसमें मेरा कुछ नहीं है—इस सत्य को अनुभव करें—इससे मुझे कुछ नहीं चाहिए, मेरा कुछ है नहीं, मुझे कुछ चाहिए नहीं। इन्हीं दो बातों से सम्बन्ध टूटता है। दोनों बातें निज ज्ञान से सिद्ध हैं। आप ज्ञानपूर्वक यह भली भाँति जानते हैं कि किसी भी उत्पन्न हुई वस्तु की स्वतन्त्र स्थिति नहीं है। स्वतन्त्र स्थिति का अर्थ क्या होता है? आप संसार के सम्बन्ध में यह निर्णय दे सकें कि ऐसा है—यह आपका निर्णय नहीं हो सकता। वैसे तो अनेक दार्शनिक दृष्टिकोण हैं। सबने कुछ न कुछ संकेत किया है पर जैसा जिसने संकेत किया है, वैसा ही है—ऐसा नहीं कहा जा सकता है। 'है' तो उसे कहा जाए, जिसकी स्वतन्त्र स्थिति हो। परिवर्तन का प्रवाह चल रहा हो, उसमें स्थिति कैसे कहेंगे आप।

तो जिसकी स्थिति नहीं है, उसमें अपना करके कुछ नहीं है। क्योंकि अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। आप विचार करके देखें कि जैसे शरीर के परिवर्तन का आपको अनुभव हो रहा है—उत्पत्ति का, विनाश का, परिवर्तन का ऐसे किसी भी भाई को, किसी भी बहन को अपने परिवर्तन का अनुभव नहीं होता, न उत्पत्ति का अनुभव होता। बड़े-बड़े वैज्ञानिक यह तो कह सकते हैं कि शरीर की उत्पत्ति हुई, लेकिन कोई वैज्ञानिक नहीं कह सकता कि 'मैं' की उत्पत्ति हुई। 'मैं' की उत्पत्ति की बात कोई भी वैज्ञानिक आज तक सिद्ध नहीं कर सका। और 'मैं' का स्वतन्त्र अस्तित्व है—ऐसा कोई दार्शनिक भी सिद्ध नहीं कर सका। क्योंकि 'मैं' की खोज की तो 'है' मिल गया और 'मैं' मिट गया। अब

जो चीज विज्ञान से और दर्शन से सिद्ध नहीं है, उसको मानते रहना यह भूल है।

आप कहेंगे कि दर्शन क्यों नहीं 'मैं' को सिद्ध कर सका? आप विचार करके देखो, जिसे आप 'मैं' करके अनुभव कर रहे हैं, क्या उसका 'यह' से सम्बन्ध हो सकता है कभी? अच्छा हो क्यों नहीं सकता? इसलिए नहीं हो सकता कि है ही नहीं और होगा भी नहीं। पर आप 'यह मेरा है' ऐसा किस आधार पर मानते हैं? जिस वाणी से बोल रहा हूँ, वह वाणी मेरी है, इसमें क्या हेतु है। कैसे मान लेते हैं आप? जबकि आप जानते हैं कि 'मैं' का 'यह' से सम्बन्ध है भी नहीं, हो सकता भी नहीं। और जब 'मैं' का 'यह' से सम्बन्ध नहीं रहता—अगर आप यह ठीक अनुभव कर लें तो आप में किसी प्रकार की परिच्छिन्नता रहती है, तो बताइये। और जब परिच्छिन्नता नहीं रहती तो जो अपरिच्छिन्न परमात्मा है उससे दूरी कैसे सम्भव है?

तो जो जीवन का सत्य है—हमें तो बड़ा आश्चर्य लगता है—देखो भाई, कोई बुरा तो मानना मत, पर ठण्डे दिल से सोचना—जो चीज ज्ञान से सिद्ध है, क्या उसके लिए भी प्रमाण चाहिए? वह ज्ञान क्या हुआ—वह तो विश्वास हो गया। विश्वास में और ज्ञान में यहीं तो फर्क है कि जो चीज ज्ञान से सिद्ध है, उसके लिए प्रमाण वास्तव में चाहिए नहीं। तो ठीक ज्ञान से क्या सिद्ध है कि 'मैं' का और 'यह' का मिलन देखा नहीं गया। अब यह बात अलग है कि 'मैं' स्वयं 'यह' में ममता कर ले, यह की कामना कर ले, इसमें वह स्वाधीन है। तो 'मैं' में 'यह' की ममता मैंने स्वीकार की या किसी और ने विवश कर दिया ममता करने के लिए? आपने स्वीकार की। जब आपने ममता स्वीकार की तो यह ममता कि यह चीज मेरी है, यह ज्ञान से सिद्ध है क्या?

और विश्वास से सिद्ध है क्या? न ज्ञान से सिद्ध है न विश्वास से सिद्ध है। फिर जीवन में ममता का क्या स्थान है।

विचार करके देखा जाए—यह बात अलग है कि आप स्वीकार की हुई ममता को कैसे तोड़ेंगे, उसके लिए तो कोई दूसरा उपाय करना पड़ेगा। लेकिन मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि ममता आपने किस आधार पर स्वीकार की, जबकि आपके ज्ञान से सिद्ध नहीं है। हाँ, एक बात कह सकते हैं कि हमें मालूम नहीं है कि कब से स्वीकार की, पर ज्ञान का विरोध है। इसलिए कोई चीज मेरी है नहीं—यह बात कह सकते हैं। जब यह कह सकते हैं तो मेरी नहीं है जो चीज, आपने उसको मान करके जैसे यह वाणी मेरी नहीं, पर वाणी को अपनी मान करके मुझे बोलने की स्वाधीनता मिली।

तो यह जो बोलने की स्वाधीनता मिली, तो क्या वाणी से ऐसी बात बोलना चाहिए जिससे श्रोताओं को कष्ट हो। क्या राय है? या उनका अहित हो, या अपने ज्ञान का विरोध हो। क्या राय है? नहीं बोलना चाहिए। इसका मतलब क्या हुआ कि सबसे पहले मुझे ज्ञान-विरोधी कर्म नहीं करना चाहिए। क्या राय है? ज्ञान-विरोधी कर्म नहीं करना चाहिए। अच्छा जब ज्ञान-विरोधी कर्म नहीं करेंगे, तो ज्ञान के अनुरूप कर्म होगा या ज्ञान के विरुद्ध हो जाएगा? उसी कर्म के द्वारा योग की प्राप्ति होती है।

जो लोग यह कहते हैं कि कर्म से योग की प्राप्ति नहीं होती, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। भई, ज्ञान-विरोधी, कर्म आपने छोड़ दिया—झूठ बोलना छोड़ दिया तो क्या सत्य बोलना नाश हो गया? हाँ, एक बात है कि सत्य बोलने का फल मुझको नहीं चाहिए। अगर फल चाहिए तो पुण्य होगा, लोक-लोकान्तर के उत्कृष्ट भोग मिलेंगे और नहीं चाहिए तो जीवन-मुक्ति मिलेगी। लोग कैसे यह कह देते हैं कि

कर्म के द्वारा मानव मुक्त नहीं हो सकता। मुक्त तो हो सकता है, लेकिन कर्म के फल का, और अभिमान का त्याग करके। गलत काम करें नहीं, सही का फल माँगें नहीं, सही का अभिमान करें नहीं। अब बताओ कौन सी चीज बाँधने वाली रह गई? (श्रोता प्रश्न करता है कि कर्म का और मैं का सम्बन्ध कैसे टूटे? जैसे सत्य बोलेंगे तो सत्य बोलने का अभिमान कैसे नहीं होगा।

स्वामी जी ने कहा कि अहंता नहीं होती है कब? जैसे आप भोजन करते हो तो अहंता रहती है कि आज मैंने चावल थोड़े ज्यादा खा लिए। अन्न पचता है, तो क्रिया होती है कि नहीं? किन्तु भोजन पचाने का आपको आभास होता है कभी? बुरे काम का प्रायश्चित है अच्छे कर्म करना। यदि आप बुरे कर्म नहीं करेंगे, तो अच्छे कर्म का अभिमान आएगा? जैसे सत्य बोलने का अभिमान कब होता है जब हम अपने लिए बोलते हैं। हमारा नाम सत्यवादियों की सूची में हो जाए, सत्य बोलने का जो पुण्य है वह हमको मिल जाए तब अभिमान होता है। झूठ बोलते हैं भोग की रुचि को लेकर और सत्य को बोलते हैं पुण्य की रुचि को लेकर। लेकिन, जिसको कुछ नहीं चाहिए, वह सत्य काहे को बोलेगा और झूठ काहे को बोलेगा? सत्य बोलेगा और झूठ बोलने का त्याग करेगा। देखिए, आप विचार करके देखो—सत्य बोलते हैं इसलिए कि बोलने के राग को मिटा नहीं सके। यदि हमारे जीवन में करने का राग न होता तो हमारा शरीर से तादात्म्य होता ही क्यों? हमें क्यों यह प्रतीत होता, कि हमारा जन्म हो गया हमारी मृत्यु हो गई।

मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि चाहे आप कर्त्तव्य-पथ के साधक हों, चाहे आप विचार-पथ के साधक हों, चाहे आप विश्वास-

पथ के साधक हो—साधक हैं। यह मानना पड़ेगा। विचार-पथ का साधक सिद्ध थोड़ा ही है। और यदि विश्वास है तब भी साधक है सिद्ध थोड़ा ही है। तो कर्त्तव्य-पथ का भी हमारे जीवन से सम्बन्ध है, विश्वास-पथ का भी हमारे जीवन से सम्बन्ध है और विचार-पथ का भी हमारे जीवन से सम्बन्ध है।

कर्त्तव्य-पथ हमें करने के राग से मुक्त करता है, यह तो अपना व्यक्तिगत लाभ हुआ और हमारे द्वारा संसार के अधिकार की रक्षा होती है, यह बाह्य लाभ हुआ। महान् विरक्त हो या ज्ञानियों की दुम हो, जब भूख लगती है तो साहब, हमने देखा है कि जब साधक विरक्त लोग इकट्ठे होते हैं तो वहाँ पहली चर्चा क्या होती है? कहाँ से आए भगवन्? तो कहेंगे वहाँ से आए। तो भगवन् वहाँ भिक्षा इत्यादि कैसी है? अरे हमने एक बड़े विरक्त महापुरुष से जो पंडित कहलाते थे विरक्त मण्डल के—वह कह रहे थे कि जब पहले कुंभ में जब आए थे, तो हमने ऐसा अमरूद खाया था, जिसमें बीज नहीं था। हमनें कहा बारह वर्ष पहले का खाया हुए अमरूद की याद बनी हुई है? तो कह भले ही लो। वास्तविक बात यह है कि सब साधक हैं, सिद्ध तो कोई है नहीं। और साधक में यह है कि आपके पास जो करने की सामर्थ्य है, जो जानने की सामर्थ्य है और जो मानने की सामर्थ्य है ये तीनों सामर्थ्य इनका क्या अचार डालोगे? क्या उपयोग नहीं करोगे?

आप करने की सामर्थ्य का क्या उपयोग करोगे? सेवा—ऐसा मान लो, हमारे कहने से मान लो, आपका सवाल हल हो जाएगा—यह मान लो कि हम पर सभी का अधिकार है। सभी का अधिकार है, तो क्या करें? तो भैया, बुराई तो किसी के साथ करेंगे नहीं। बुराई-रहित हो गए। अब होने लगेगी भलाई। अब तो हमें दूसरों का अधिकार

देना है हमारा तो अधिकार किसी पर है ही नहीं। उसका अभिमान और फल कैसे माँगें? तो भलाई के अभिमान और फल से मुक्त हुए और बुराई करने से मुक्त हुए। क्या यह एक सहज और स्वाभाविक मानवीय स्वभाव नहीं है? क्या राय है? यह सहज स्वभाव है किसका? यह मानवीय स्वभाव है। यहाँ आत्मा-परमात्मा का, किताब का पढ़ा हुआ जो ज्ञान है, उसे इसमें शामिल न करना।

इस मानवीय स्वभाव के अनुसार हम स्वाधीन नहीं हो जाते क्या? अपने में संतुष्ट नहीं हो जाते क्या? और अपने में सन्तुष्ट होकर अपने को पाते हैं या परमात्मा को पाते हैं? तो जब हम अपने में संतुष्ट हुए तो कोई जो हमारा था, वेद जिसकी महिमा गाते हैं, ग्रन्थ जिसकी महिमा गाते हैं, भगवान जिसका वर्णन करते हैं, उसने हमें कहा कि मेरी चाह कर। एक मैं हूँ और एक तू है। तू है मेरी प्रीति और मैं हूँ तेरा प्रियतम। तो प्रीति से तू रस ले और मुझको रस दे। और जब उससे नहीं रहा जाता तो प्रियतम स्वयं कहता है मुझे भी जरा

प्रीति कर लेने दे। अरे भाई, विश्वास के आधार पर ब्रह्म जीव-भाव को प्राप्त होता है, विचार के आधार पर जीव-भाव मिथ्या होता है, ... विचार के आधार पर जीव भाव जो है, वह मिथ्या सिद्ध होता है कि है नहीं। और विश्वास के आधार पर ब्रह्म जीव-भाव को प्राप्त होता है—शबरी के बेर खाने के लिए, गोपियों का माखन खाने के लिए, विदुरानी के छिलके खाने के लिए—सोचो, विचार करो। अब आप एक बात हमें बताओ, कि आपको मुक्ति के सिवाय कोई बड़ी चीज दिखाई देती है क्या? मुक्ति कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है। अगर ईमानदारी से देखा जाए, तो जैसे वैराग्य योग का साधन है, ऐसे ही भैया योग बोध का साधन है और बोध प्रेम का साधन है।

हमने विचार करके देखा है कि सभी राग विचार से नहीं मिटाए जाते। सही काम करने से ही करने का राग निवृत्त होता है, सरकार, न करने से करने का राग निवृत्त नहीं होता। मैं यह निवेदन करता हूँ कि एक बात जो सुन कर मानी जाती है, वह ज्ञान है या विश्वास?

आप तो विश्वास के पथ को ज्ञान का पथ मानने लगे और ज्ञान के पथ को आपने छोड़ ही दिया। लेकिन ज्ञान और कर्म—ये दोनों तत्त्व अपने में प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देते क्या? दोनों दिखाई देते हैं। तो कर्म का सम्बन्ध योग के साथ है और ज्ञान का सम्बन्ध भूल मिटाने में है? क्या भूल मिटाएँ? यह भूल, कि मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य को जो हम अपना मानते थे, यह अपनी नहीं है। तो यह भूल मिट गई। और जब मिली हुई अपनी नहीं है, तो उसी तरह की और वस्तुएँ चाहें क्यों? तो अचाह होना और निर्मम होना—यह ज्ञान का फल है कि नहीं? अच्छा निर्मम होने से जो निर्विकारता प्राप्त होती है और अचाह होने से जो शान्ति प्राप्त होती है—जरा विचार कीजिएगा—वह शान्ति स्वत: सिद्ध है या नहीं? वह निर्विकारता स्वत: सिद्ध है कि नहीं। अगर उस निर्विकारता में हम रमण करें और शान्ति में रमण करें तो स्वाधीन हो सकते हैं क्या? कभी नहीं हो सकते। अच्छा, स्वाधीनता में सन्तुष्ट रहें, तो पूर्ण हो सकते हैं क्या? पूर्ण भिखारी बनता है प्रेम का और जो अपूर्ण होता है उसका स्वरूप होता है प्रेम।

मैं आपसे यह निवेदन कर रहा हूँ कि जो लोग यह कहते हैं कि केवल ज्ञान से ही अज्ञान नाश होता है, विश्वास से नहीं होता, कर्म से नहीं होता। जो कहते हैं वे स्वतन्त्र हैं, कह सकते हैं। उनका अज्ञान उसी से नाश हुआ होगा। ऐसा मैं नहीं कहता कि नहीं होता, लेकिन मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि सही काम करके क्या काम-रहित नहीं होते और काम-रहित होने पर भगवान में और हममें पर्दा रहेगा? परमात्मा

से हमको किसने दूर किया? संसार के आकर्षण ने। तो संसार का आकर्षण क्या सेवा से नाश नहीं होगा? सेवा कहो, कर्त्तव्य कहो, धर्माचरण कहो। जरूर हो जाएगा। तो संसार नाश हुआ कि संसार का आकर्षण नाश हुआ? अच्छा शरीर मुक्त हुआ, संसार मुक्त हुआ कि जिसका आकर्षण नाश हुआ, वह मुक्त हुआ? तो हम तो कर्म से मुक्त हो गए। तो आप कैसे कहते हो कि ज्ञान से ही मुक्त होते हैं। मुक्ति के भोगी में अहं रहता है और जो मुक्ति का भोगी नहीं है उसमें अहं नहीं रहता। वह हो गया प्रेम। प्रेम प्रेमी में रहता है और प्रेमास्पद में रहता है। विवेकी लोग परमात्मा को ज्ञान स्वरूप कहते हैं कि नहीं? तो ज्ञानी का नाश होगा कि ज्ञान जिसका स्वरूप है, उसका नाश होगा? ऐसे ही प्रेमी का नाश होगा कि प्रेम का नाश होगा? इस तरह ही योगी का नाश होगा कि योग का नाश होगा? तो योग, बोध, प्रेम रहेगा कि नहीं? वही तुम्हारा स्वरूप है। वह तुम्हारा स्वरूप हुआ और वह जो योग-बोध-प्रेम है, वह परमात्मा की महिमा हुई।

❑ ❑ ❑

सन्तवाणी

प्रवचनमाला

भाग–8

सन्त हृदय की करुण पुकार

हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे समर्थ हे करुणासागर विनती यह स्वीकार करो ,
हे समर्थ हे करुणासागर विनती यह स्वीकार करो ,
भूल दिखाकर उसे मिटाकर अपना प्रेम प्रदान करो ।
भूल दिखाकर उसे मिटाकर अपना प्रेम प्रदान करो ।
पीर हरो हरि पीर हरो हरि पीर हरो प्रभु पीर हरो ।
पीर हरो हरि पीर हरो हरि पीर हरो प्रभु पीर हरो ।